# सहज मार्ग के प्रमुख तत्व

SMRTI SERIES I

सहज मार्ग शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान
श्री राम चंद्र मिशन
विश्व मुख्यालय
मणपाक्कम, चेन्नै

S. C. Sinha

# सहज मार्ग के प्रमुख तत्व

SMRTI SERIES I

सहज मार्ग शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान
श्री राम चंद्र मिशन
विश्व मुख्यालय
मणपाक्कम, चेन्नै

## विषय-वस्तु पृष्ठ सं०



'पूज्य बाबूजी महराज की पुस्तकों तथा हमारे प्रिय मालिक पूज्य श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी जी के भाषणों से संकलित'

# प्रार्थना

सहज मार्ग एक सरल पद्धति है। इसके अभ्यास के कुल तीन तत्व हैं - प्रार्थना, ध्यान और सफ़ाई। जब कोई पद्धति इतनी सरल हो कि उसमें केवल दो या तीन ही तत्व हों तो वे सभी अनिवार्य हो जाते हैं। यदि इनमें से किसी एक की कमी रह जाए या उसे हटा दिया जाए तो पद्धति अपने काम में सम्भवतः प्रभावहीन रह जायेगी। सहज मार्ग अभ्यास में यदि पद्धति की प्रभावशीलता को क्षति नहीं पहुँचानी है तो हम इन तत्वों में से किसी को भी नहीं छोड़ सकते।

प्रार्थना क्या है? मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मेरी समझ में प्रार्थना का वास्तविक अर्थ क्या है। मेरे लिए प्रार्थना अन्दर से उठनेवाली पुकार है, जो हम नहीं जानते कि किसके लिए है, किन्तु होती है वह किसी अन्दर की ज़रूरत को पूरा करने के लिए। छोटे बच्चे की बात लीजिए। जब वह भूखा होता है, तो रोता है, और उसकी माँ उसे दूध पिलाने दौड़ती है। लेकिन क्या बच्चा जानता है कि वह भूखा है, और उसे अपनी भूख को व्यक्त करने के लिए रोना चाहिए? निश्चित रूप से नहीं। यह तो एक ऐसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए भीतर से उठने वाली प्रकृति की पुकार है, जिसके बारे में बच्चा नहीं जानता और प्रकृति उसकी माँ के रूप में बच्चे की मूक रूप से व्यक्त की गई इस माँग की पूर्ति बाहर से करती है। इसलिए मैं प्रार्थना की परिभाषा यह करूँगा कि प्रार्थना बाहरी प्रकृति को की गई, आन्तरिक प्रकृति की एक पुकार है जो ऐसी ज़रूरत की पूर्ति के लिए उठती है जिसकी ख़बर चेतन रूप में 'स्व' को नहीं होती। किन्तु आन्तरिक प्रकृति इस ज़रूरत को पहचानती है और उसे वाणी देती है।

यदि इस दृष्टि से प्रार्थना को देखेंगे तो हम पायेंगे कि प्रार्थना के साथ माँगने का या याचना का जो भाव

सामान्यतः जुड़ा रहता है वह अब नहीं रहता। गुरुदेव ने स्वयं कहा है कि "प्रार्थना याचना है" और यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रार्थना के साथ यही एकमात्र भाव बना रहता है कि हम किसी चीज़ की याचना कर रहे हैं। किन्तु यह समझना ग़लत होगा कि गुरुदेव यह कहते हैं कि प्रार्थना याचना ही होती है। उनका तात्पर्य केवल यह है कि मनुष्य जाति के पूरे धार्मिक इतिहास में प्रार्थना शायद ही कभी इस याचना के भाव से ऊपर उठी हो।

सहज मार्ग में हम कुछ भी नहीं माँगते, क्योंकि मालिक ने कहा है कि यह भीख माँगना है। लेकिन प्रार्थना भीख माँगना नहीं है। "तब प्रार्थना क्या है?" मैंने मालिक से पूछा। उन्होंने कहा," तुम्हें भिक्षा का पात्र लिए केवल अपने हाथ आगे फैलाने हैं। तुम्हें इस बात का भी भान न रहे कि तुम्हारे हाथ में भिक्षा का पात्र है। तुम्हें इसका भी भान न रहे कि उसमें कुछ डाला गया है।"

**सहज मार्ग की प्रार्थना क्या है?** हमारी सहज मार्ग की प्रार्थना पूर्णतः भिन्न है। यह विषय और उद्देश्य दोनों दृष्टि से ही अलग है। यह कुछ निश्चित तथ्यों का कथन मात्र है, इसमें कोई माँग नहीं जुड़ी है। गुरुदेव का कहना है कि **मन ही मन केवल एक बार इस प्रार्थना को कहने से उनसे सम्बन्ध जुड़ जाता है और यही इसका एकमात्र** उद्देश्य है। इसके बाद प्राणाहुति का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे कि हम बटन दबाते हैं और विद्युत प्रवाह शुरू हो जाता है। अतः हमारे उद्देश्य के लिए यह अत्यावश्यक है। इस पद्धति से, जिसका अनुसरण हम कर रहे हैं, यदि हमें लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता मिलती है तो प्रार्थना का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं आपको याद दिलाना चाहूँगा कि गुरुदेव ने यह निर्धारित किया है कि सुबह ध्यान प्रारम्भ करने के पूर्व मन ही मन प्रार्थना को एक बार कहा जाए। यदि प्रार्थना ही वह चीज़ है जो अभ्यासी को गुरुदेव से जोड़ती है तो प्रार्थना को मन ही मन न कहने से यह सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा। शायद इसी कारण से बहुत से अभ्यासियों की प्रगति में कमी है। अतः

यह हमारे प्रातः काल के अभ्यास में, मालिक से सम्बन्ध जोड़ने का काम करती है।

हमें प्रार्थना किस तरह सम्बोधित करनी चाहिए? जब हम मालिक को या ईश्वर को सम्बोधित करके श्रद्धा के अभाव में अनादर के साथ, उपहास के साथ प्रार्थना करते हैं, तो ऐसा होता है जैसे हमारे शब्द पहाड़ से टकरा कर हमारे पास प्रतिध्वनि के रूप में वापस आ गये हों। वे उसका जवाब नहीं देते। परन्तु जब हम एक दीन-हीन की भाँति अत्यन्त विनम्रता से प्रार्थना करते हैं तो किसी भी तरह से यह 'उनके' हृदय तक पहुँच जाती है और जवाब आ जाता है। अतः प्रार्थना अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रेम से करनी चाहिए।

प्रार्थना सफलता का सबसे महत्वपूर्ण और अचूक उपाय है। इसके ज़रिये हम पावन दिव्यता से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। प्रार्थना प्रेम और भक्तिपूर्ण हृदय से इसीलिए की जानी चाहिये कि व्यक्ति अपने में एक प्रकार की रिक्तता पैदा करे जिससे ईश्वरीय कृपा के प्रवाह को उसकी ओर मुड़ सके।

हम ध्यान से पहले प्रार्थना क्यों करते हैं? बाबूजी ने कहा है कि यह स्वयं को उस अनन्त सत्ता से तत्काल जोड़ने का तरीक़ा है, जिससे पथ-प्रदर्शन और सहायता पाने की हम कोशिश करते हैं। अगर हम इसे प्रभावपूर्ण तरीक़े से करें, तो ध्यान प्रभावशाली और उत्कृष्ट हो जाता है।

मिशन की प्रार्थना :

*"हे नाथ ! तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है।*

*हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं,*

*जो हमारी उन्नति में बाधक है।*

*तू ही हमारा एकमात्र ईश्वर और शक्ति है,*

*जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।"*

पहली पंक्ति कहती है कि हमारा ध्येय कौन और क्या है? और यह वास्तविक ध्येय है। मिथ्या, भ्रामक, चमकदार और अस्थायी ध्येय तो बहुत से हो सकते हैं, हमारा वास्तविक ध्येय क्या है? "तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है।" दूसरी पंक्ति में इस बात की व्याख्या है कि मैं इस समय क्या हूँ? "हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, जो हमारी उन्नति में बाधक है।" तीसरी पंक्ति कहती है कि मैं केवल तुम्हारी कृपा से ही वहाँ तक पहुँच सकता हूँ। "तू ही एकमात्र ईश्वर और शक्ति है, जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।" इसलिए बाबूजी ने कहा है कि इस प्रार्थना का ग़लत अर्थ मत निकालो। यह माँगना नहीं है, याचना नहीं है, इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है। इससे हम सुबह स्वयं को अपने लक्ष्य की, अपने जीवन के उद्देश्य की याद दिलाते हैं, अपनी वर्तमान अवस्था को समझते हैं, और उसी को याद करने की कोशिश करते हैं, जो हमें, हमारे लक्ष्य तक पहुँचा सकता है। यह केवल वस्तुस्थिति का बयान है, केवल एक याद दिलाना है।

**अपनी प्रार्थना में हम 'हे नाथ' क्यों कहते हैं, 'हे ईश्वर' क्यों नहीं कहते?** मेरे मालिक का कहना था कि ईश्वर के मन नहीं है। हम सभी जानते हैं कि मन वह चीज़ है जो हमारी चेतना से सम्बद्ध है। फिर ऐसी अवस्था में जहाँ मन ही नहीं है वहाँ हमारी प्रार्थना कौन सुनेगा? उसका उत्तर कौन देगा? इसीलिए सहज मार्ग कहता है कि ईश्वर से प्रार्थना करना व्यर्थ है। इसके पक्ष में तर्क देते हुए यह दो बातें बताता है। सर्वप्रथम तो यह कि हम अपने कर्मों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी हैं और दूसरी बात यह कि 'वह' न तो हमारी बात सुन सकता है, न ही हमें उत्तर दे सकता है।

इसीलिए पूरब का ज्ञान कहता है कि जो कार्य स्वयं ईश्वर नहीं कर सकता, उसे करने के लिये वह सद्गुरु को भेजता है। यह आध्यात्मिक विश्वास या विकसित आत्माओं का विश्वास है कि **गुरु मनुष्य के रूप में ईश्वर है, जिनके पास मन भी है और हृदय भी। इसीलिए वे हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर देने में समर्थ हैं** और हमारे

लिये भी उनकी कृपा पाना आसान है क्योंकि वे भी मनुष्य होने के नाते वही अनुभव करते हैं जो हम, मनुष्य होने के नाते करते हैं।

इसीलिए मानव के स्तर से ऊपर उठ कर दिव्यता के स्तर तक विकसित होने में वे हमारी मदद कर सकते हैं। मैं तो समझता हूँ कि ईश्वर की अपेक्षा सद्‌गुरु से प्रार्थना करने में अधिक बुद्धिमानी है। हालाँकि सद्‌गुरु यह जानते हैं कि हम अपने कर्मभोग के लिये स्वयं ही उत्तरदायी हैं, फिर भी मनुष्य होने के नाते वे हमारे प्रति सहानुभूति रखते हैं। अपनी सहानुभूति और करुणा के वशीभूत होकर वे अपनी दिव्य शक्तियों का भण्डार हमारे लिये खोल देते हैं।

हमें अपने गुरुदेव से प्रार्थना करनी चाहिए और जब अपनी प्रार्थनाओं के उत्तर मिलने लगें तो हमें अपने गुरुदेव के प्रति कृतज्ञ भी होते जाना चाहिये। ऐसा करना ईश्वर का अनादर करना नहीं हैं। क्योंकि सच पूछा जाये तो सद्‌गुरु के रूप में हम ईश्वर से ही तो प्रार्थना करते हैं। संयोग से यह उस प्रश्न का भी उत्तर है कि अपनी प्रार्थना में हम 'हे नाथ' क्यों कहते हैं, 'हे ईश्वर' क्यों नहीं?

तू ही मनुष्य जीवन का ध्येय है - किसलिए? यह पूजा का 'स्तोत्र प्रिय' पक्ष नहीं है। यह आराधना का कोई 'अभीषेक प्रिय' पक्ष भी नहीं है। बल्कि दिल से दिल का एक सकारात्मक सम्पर्क है जिसे हम ईमानदारी और प्रेम से स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह कोई यान्त्रिक वस्तु नहीं है। प्रक्रिया यान्त्रिक है, लेकिन इसके पीछे श्रद्धा और प्रेम का भाव है। अतः जब हम यान्त्रिक रूप से अभ्यास करते हैं तो हमें इसका पूरा लाभ नहीं मिलता। जैसा कि बाबूजी ने कहा है, "यदि आप इसे यान्त्रिक तौर पर करते हैं तो इसके पीछे न कोई प्रेरक शक्ति है, न कोई उत्साह।"

तो वह क्या है जो एक अभ्यासी को दूसरे से भिन्न बनाता है? वह है मालिक के प्रति श्रद्धा, मालिक के प्रति प्रेम, यह कुछ इतना प्रभावशाली होता है जिसे वे अनसुनी नहीं कर सकते। जब दोनों का युग्म होता है, तब वह

भक्त कहलाता है - एक ऐसा व्यक्ति जो अभ्यास करता है, साथ ही मालिक से प्रेम भी करता है। और तब यह चमत्कार होता है कि 'वे' हम पर अपनी कृपा बरसाते हैं।

हमारी प्रार्थना बहुत ही स्पष्ट रूप से, असन्दिग्ध रूप से, मनुष्य जीवन के **'वास्तविक ध्येय'** की ओर संकेत करती है। यहाँ 'वास्तविक ध्येय' शब्द ध्यान देने योग्य है। उन्होंने इस शब्द 'वास्तविक ध्येय' का प्रयोग क्यों किया? केवल 'ध्येय' क्यों नहीं? इसलिए, क्योंकि ध्येय तो बहुत से हो सकते हैं।

बाबूजी ने स्वयं कहा है कि **वही** वास्तविक ध्येय है। हम पृथ्वी पर केवल उनके प्रतिनिधि हैं किन्तु यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है और मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि मैंने अपने मालिक की उपस्थिति में ही सर्वोच्च की उपस्थिति का अनुभव किया है। मैंने यह अनुभव एक बार नहीं वरन् कई बार किया है। मालिक और ईश्वर दोनों को दो अलग-अलग चीज़ समझकर ईश्वर प्राप्ति के बाद, मालिक को नकारने की, और पीछे छोड़ने की भूल कई लोगों ने की, जिनमें से आज कई सहज मार्ग में नहीं हैं। इसीलिए हमें यात्रा के अन्त तक मालिक की ज़रूरत होती है। यह आपको स्पष्ट रूप से दिखाता है कि सही लक्ष्य कहाँ है?

**हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, जो हमारी उन्नति में बाधक है।** हमारी प्रार्थना में कहा गया है कि हमारी इच्छाएँ हमारी उन्नति में बाधक है। किसी भी चीज़ की इच्छा - चाहे वह विलास हो, चाहे वह कुछ सुविधाएँ हों, धन-दौलत, अमीरी, स्वास्थ्य, कुछ भी। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि अच्छी इच्छा जैसी कोई वस्तु हो ही नहीं सकती इच्छा अच्छी या बुरी नहीं है। यदि हम इच्छा की पूर्ति करने में लगते हैं तो यह और भी बुरा है क्योंकि इच्छापूर्ति आहुति का काम करती है जो चिनगारी को प्रज्वलित कर प्रचण्ड अग्नि में और उसे फिर विस्फोट में बदल देती है और इसका परिणाम होता है विनाश। इससे यह बात स्पष्ट है कि इच्छाएँ अपने आप में हमारी दुश्मन हैं।

तू ही हमारा एकमात्र ईश्वर और शक्ति है जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है। यहाँ हम इस सच्चाई को स्वीकार करते हैं कि हमारे अपने प्रयत्नों से कुछ भी सम्भव नहीं है। हम ख़ुद के सामने असलियत को रखते हैं कि केवल वही हमें अस्तित्व की उस स्थिति तक ले जाने में हमारी मदद कर सकता है। कृपया फिर से ध्यान दीजिए कि हम ईश्वर से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं माँग रहे हैं।

अतः इस प्रार्थना में तीन वक्तव्य हैं। जहाँ पहला हमारे सामने हमारा ध्येय रखता है, वहाँ दूसरा हमें बताता है कि हमारी उन्नति में एकमात्र बाधा, हमारी इच्छाएँ हैं और तीसरा बताता है कि हमें उस तक पहुँचाने के लिए वह ध्येय यानी स्वयं ईश्वर ही हमारी सहायता कर सकता है।

सहज मार्ग की प्रार्थना के विभिन्न पहलू क्या हैं? हमें वह माँगने का तो अधिकार है, जिसकी हमें ज़रूरत है, परन्तु वह नहीं जिसको हम चाहते हैं। चाहतों का निर्माण हम करते हैं। बाबूजी ने बहुत स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में यह दोहराया है कि हम कभी भी अपनी ज़रूरतों के लिए प्रार्थना नहीं करते, बल्कि अपनी चाहतों के लिए करते हैं। इसलिए इसे भीख माँगना कहते हैं। तो हम विनम्रता से प्रार्थना करें कि "मालिक अपने आशीर्वाद का बोझ मुझ पर ज्यादा न डालें। मैं इसे सहन नहीं कर पाऊँगा। मुझे उतना ही दीजिए जितना मैं वहन कर सकूँ।"

मालिक के आशीर्वाद ऐसे विलक्षण तरीक़े से आते हैं जिन्हें हम देख नहीं सकते। कितनी बार यह हमें मिलते हैं, हम मुश्किल से देख या समझ सकते हैं, परन्तु यह मिलते हैं सदा ही। वरना हमारा जीवन इतना भी न रहता कि उनके आशीर्वाद पाने के लिए पुनः प्रार्थना कर सकते। अतः जब हम प्रार्थना करें तो हम विनीत भाव से थोड़ी सी दया के लिए प्रार्थना करें। मालिक! आप जानते हैं, मैं अदना इनसान हूँ, मेरी तकलीफ़ें मुझे अपनी बात बार-बार आपके सामने रखने को मजबूर कर देती हैं। कृपया इसके लिए मुझे क्षमा करें। मैं जानता हूँ जो आपको करना है

वह आप कर रहे हैं। परन्तु मैं ही उसे समझ नहीं पाता। आप जो कुछ मेरे लिए कर रहे हैं, कृपया मुझे उसे अनुभव करने की क्षमता प्रदान करें।" मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की प्रार्थना सबसे उत्तम है, जो हम कर सकते हैं।

अतः प्रार्थना व आशीर्वाद बहुत ही शक्तिशाली हैं। और जब कोई बसन्त उत्सव में सम्मिलित होने के लिए रेल टिकट हेतु प्रार्थना करना चाहता है तो फिर हम वही ग़लती कर रहे हैं। बाबूजी ने कहा है कि हम सुई उठाने के लिए क्रेन का इस्तेमाल करते हैं। **प्रार्थना तो वह शक्ति है जो पहाड़ को भी हिला सकती है,** इसका उपयोग रेल का टिकट ख़रीदने के लिए नहीं करना चाहिए। "हे मालिक ! मुझे ऑटो-रिक्शा की ज़रूरत है, कृपया मेरे लिए भेज दें। और अभ्यासी कहता है, "आप जानते हैं क्या चमत्कार हुआ! तीन दिशाओं से तीन ऑटो-रिक्शा आ गये! इस तरह हम मालिक को मूर्ख साबित कर रहे हैं। क्या एक काफ़ी नहीं था, जो उन्हें तीन भेजने पड़े! देखिए, हम प्रार्थना और आशीर्वाद को समझने में कितनी मूर्खता करते हैं? अतः सन्त बनना आसान है, परन्तु साधक बनना बहुत मुश्किल है। सही साधक बनने के लिए मालिक और अपने सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से समझना पड़ता है, यह समझना है कि इसमें सदा विनम्रता, दीनता एवं प्रार्थना है। हमें समझना है कि **प्रार्थना भी सूक्ष्म रूप से इस प्रकार की जाए कि आप को भी पता न चले कि आप प्रार्थना कर रहे हैं** - आपको इसका भान तक नहीं होना चाहिए। और इस प्रकार से की गयी प्रार्थना कुछ ऐसी हो जैसे आपके अस्तित्व की पृष्ठभूमि, जहाँ दिल की हर धड़कन, प्रार्थना नहीं बनती बल्कि अस्तित्व के जिस पथ पर वे आपको ले जा रहे हैं, उसके प्रति आभार की अभिव्यक्ति बन जाती है। तभी हम सच्चे साधक माने जा सकते हैं।

अतः हम मालिक से प्रार्थना करें, "मालिक! कृपया सबसे पहले मुझे सच्चे रूप में, सच्चे अर्थ में अभ्यासी बना दें। ऐसा, जो आपके सिद्धान्तों के अनुसार ज़िन्दगी बसर करता है, जो आपकी आज्ञाओं और निर्देशों का पालन

करता है, जो बताये गये अभ्यास का निष्कपटता, ईमानदारी और समर्पण के साथ अनुपालन करता है। वह लक्ष्य जहाँ मुझे पहुँचना है मुझे उसका बोध बना रहे। क्या हम आध्यात्मिकता के इस खेल में राजनीति के लिए हैं, धन के लिए हैं या इस, उस अथवा किन्हीं और चीज़ों के लिए हैं? नहीं, मैं यहाँ अपने व्यक्तिगत आध्यात्मिक क्रम-विकास के लिए हूँ। कृपया मेरे मन को इस लक्ष्य से भटकने न दें। कृपया मुझे सदा याद दिलाये रखें कि मैं यह सब अपने 'उच्च स्व' के लिए कर रहा हूँ। मैं इस भ्रांति में या काल्पनिक उड़ान में न रहूँ कि मैं यह अपने माता-पिता, समाज या भारतवर्ष के लिए कर रहा हूँ।" यह सब बाद में होगा यदि ईश्वर की मर्ज़ी हुयी और आप इसके योग्य हुए। इसीलिए मालिक ने एक बार मुझे आध्यत्मिक जीवन का पहला नियम बताया था कि ख़ुद को इतना प्यार करो कि तुम ख़ुद को बरबाद न कर सको, बल्कि खुद को वह बनाओ जिसे तुम ख़ुद प्यार कर सको। बाक़ी सब बाद में देखा जाएगा।

अपनी दृष्टि को सीमित न करो। मत कहो, "बाबूजी शाहजहाँपुर में थे।" हाँ, यह एक वृत्त के केन्द्र की तरह है। वृत्त का केन्द्र कहाँ है? यह इस पर निर्भर करता है कि वृत्त कहाँ है। ब्रह्माण्ड के सभी वृत्तों का केवल एक ही केन्द्र हो सकता है। है कि नहीं? वे यहाँ हो सकते हैं और नहीं भी, यह मुझ पर निर्भर करता है। कैसे वे यहाँ हैं, और मेरे घर में मद्रास में भी हैं, शाहजहाँपुर में भी हैं, वे पूरे संसार में किस प्रकार फैले हुए हैं? यदि मेरी चेतना, मेरी दृष्टि जो उन्होंने प्रदान की है इतनी फैली हुई हो, इतनी विस्तृत हो कि उनकी उपस्थिति को हर जगह अनुभव कर सकूँ। अब इसके लिए, हमें प्रार्थना करनी है, "मालिक! मैंने तो आपको बस ऐसे ही देखा है। आप अपनी परोपकारिता, अपने प्रेम, अपनी दया, अपनी दिव्यता से मुझे वह दृष्टि प्रदान करने की कृपा करें, जो मुझे आपके असली स्वरूप को देखने योग्य बना सकती है।" जब तक हमें यह दृष्टि नहीं मिलती, तब तक हमारी पहुँच चाहे किसी भी क्षेत्र तक क्यों न हो जाए - और मैं

मालिक से प्रार्थना करता हूँ कि हम सभी को उस क्षेत्र का सब कुछ प्राप्त हो - परन्तु हमें आध्यात्मिकता में जो बनना है, उससे यह अभी भी बहुत कम है।

**प्रार्थना कब करनी है?** वास्तव में प्रार्थना हमें तभी करनी चाहिए जब कोई बात हमारे बूते के बाहर हो जाए। यदि मुझे एक कुर्सी यहाँ से उठाकर वहाँ रखनी है तो मैं ईश्वर से प्रार्थना नहीं कर सकता। जब तक कोई कार्य मानवीय क्षमता से बाहर न हो जाए तब तक प्रार्थना करने का कोई औचित्य नहीं है। इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। यह या तो हमारे आलस्य को ज़ाहिर करता है या ब्रह्माण्ड में ईश्वर के स्थान के प्रति हमारी नासमझी को।

बाबूजी महाराज हमेशा कहा करते थे कि उन्हें अपनी इच्छानुसार, जैसा वे उचित समझें, हमारी भलाई के लिए हम सब पर काम करने के लिए स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। और जब कभी कोई अभ्यासी अपनी अर्ज़ी या अनुरोध या प्रार्थना ही सही, उनके पास लेकर जाता, वह किसी तरह हमारे लिए काम करने की उनकी क्षमता पर प्रतिबन्ध लगाता था। हमारे अनुरोध से वे बँध जाते थे। वे दो तरह से बँध जाते थे। एक ओर हमारे लिए प्रेम और उदारता के कारण कभी-कभी यह जानते हुए भी कि हम जो माँग रहे हैं, हमारे लिए अच्छा नहीं है, वे हमें देने पर मजबूर हो जाते थे। दूसरा बँधन यह था कि जो वे हमारे लिए करना चाहते थे, उसे वे कर नहीं पाते थे। उन्होंने कई जगह इसके बारे में लिखा है। "यदि आप मुझे अपनी इच्छा के अनुसार काम करने की स्वतन्त्रता दें तो उससे आपको बहुत अधिक लाभ मिल सकता है, लेकिन यदि आप जो भी चाहते हैं, उसकी पूरी सूची लेकर मेरे पास आयें और मुझपर उन माँगों को थोपें तो मैं प्रेमवश वह सब दे दूँगा। वह मेरी भी ग़लती है।" वे मानते हैं कि वह ग़लत है। "लेकिन आप उसी फ़रमाइश को लेकर मेरे पास आते हैं, मैं वह करने को मजबूर हो जाता हूँ।" इस प्रकार हम उच्चतर लाभ से वंचित रह जाते हैं जिसे वे हमें दे सकते थे।

**सोते समय की प्रार्थना :** सोते समय अत्यन्त शरणागत भाव में, दिव्य प्रेम से लबालब हृदय से प्रार्थना की जाये। अपने मन में प्रार्थना को एक या दो बार दोहराना चाहिए और कुछ समय तक इस पर ध्यान करना चाहिए। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए जैसे कोई अत्यन्त दीन-हीन व्यक्ति अपने कष्टों को विषादयुक्त हृदय से सर्वोच्च मालिक के सम्मुख रख रहा हो तथा अश्रुपूरित नेत्रों से उसकी दया और कृपा की याचना कर रहा हो। केवल तभी वह सुपात्र जिज्ञासु हो सकता है।

**सोते समय की प्रार्थना का कार्य क्या है?** मैं मानता हूँ कि यहाँ प्रार्थना का कार्य बिलकुल ही दूसरी तरह का है। इसके अर्थ पर मनन करने से हम प्रार्थना के आध्यात्मिक अर्थ को अपनी गहरी चेतना में, अवचेतन में, स्थापित कर लेते हैं ताकि वह नींद के दौरान भी सक्रिय बना रहे। प्रातःकाल जब हम प्रार्थना एक बार दोहराते हैं तो हमारी जाग्रत चेतना में वह आध्यात्मिक चेतना उतर आती है। इस प्रकार चौबीस घण्टे का एक स्थाई, अबाधित आध्यात्मिक चेतना का चक्र बन जाता है। यह उसी प्रकार है जैसे रात को सोने से पहले जलते हुए कोयले को राख से ढक देते हैं। इससे आग बुझने नहीं पाती। सुबह हमें राख को केवल झाड़ भर देना पड़ता है और आग हमारे काम के लिए तैयार मिलती है।

**प्रार्थना क्या अभिव्यक्त करती है?** यह हमारी पद्धति का एक ख़ास अंग है। प्रार्थना को दो-तीन बार मन ही मन दोहराने और उसके अर्थ पर मनन करने से प्रार्थना के अर्थ के कई पक्ष हमारे सामने खुलने लगते हैं। प्रार्थना केवल वही नहीं रह जाती जो हमें पहली बार पढ़ने से लगती है। बहुत से नये अभ्यासी पूछते हैं कि प्रार्थना में 'हे नाथ' का संबोधन किसके लिए किया जाता है। 'नाथ' कौन है? क्योंकि बाबूजी ने 'सत्य का उदय' और 'ॠत वाणी' (रामचन्द्र की सम्पूर्ण कृतियाँ भाग 1 एवं 2) में लिखा है कि ईश्वर ही वास्तविक गुरु (नाथ) है। लेकिन हम देखते हैं कि बाबूजी लालाजी को ही अपना मालिक कहते हैं। हम भी कहते हैं कि बाबूजी मेरे मालिक हैं।

अब यह भ्रम कैसे दूर हो सकता है? नाथ कौन है और क्या है, यह जानने का सबसे सरल तरीक़ा यह है कि हम रात्रि में सोते समय इस प्रार्थना पर मनन करें। प्रार्थना पर मनन करने के लिए बनाया अभ्यास का यह अंग, हमें यों ही नहीं दिया गया है। शयन काल में नींद के समय भी हमारी चेतना में प्रार्थना शामिल रहती है और सुबह उठने पर हम पाते हैं कि यह ख़याल हमारे अन्दर बना हुआ है। यह इसका एक लाभ है। दूसरा लाभ यह है कि हम सोते समय में भी दिव्य चेतना में रह पाते हैं। यह आराम की स्वप्नहीन नींद यानी, सचमुच वास्तविक नींद दिलाने में हमारी मदद करती है। लेकिन यही सब कुछ नहीं।

जब तक प्रार्थना पर मनन करने से इसके अनेक पक्ष नहीं खुले, मैं समझता था कि इस प्रार्थना से हमें इतना ही लाभ है। अगर हम शुरू में उन्हें बिना जाँचे-परखे, उनकी सारी तथाकथित कमियों के साथ स्वीकार कर लेते हैं, जैसे चार साल की बालिका-वधू, आठ साल के बालक वर को अबोधतापूर्वक, बिना उसके बारे में कुछ जाने, भविष्य पर आस्था रखते हुए स्वीकार कर लेती है तो हमारे सामने प्रकृति के इस रहस्य का उद्घाटन होता है कि जिस आदमी के साथ हम शुरू में जुड़े थे वह हमारे लिए अधिकाधिक प्रिय होता जाता है, अधिकाधिक पूज्य होता जाता है और अन्त में एक दिन ऐसा आता है कि उसके बिना हमारा रहना असम्भव हो जाता है।

**सार्वभौमिक प्रार्थना :** हर अभ्यासी रात में ठीक नौ बजे जहाँ कहीं भी हो, अपना सारा काम छोड़कर पन्द्रह मिनट के लिए ध्यान में बैठ जाए और चिन्तन करे कि सभी भाई-बहनों में श्रद्धा और प्रेम भर रहा है और मालिक के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा दृढ़ हो रही है।

**रात्रि नौ बजे की प्रार्थना का महत्व :** विशेष अन्तर यह है कि हम और जो भी करते हैं, केवल अपने लिए करते हैं। लेकिन नौ बजे की प्रार्थना हम सभी के आध्यात्मिक एवं सार्वभौमिक कल्याण के लिए करते हैं।

मैं इसे थोड़े विस्तार से बताता हूँ। देखिए, बुद्धिमत्ता इसीमें है कि हम पूरी मानवता को अपने स्तर तक उठायें। यह तो हम सभी भली-भाँति जानते हैं कि यदि एक स्थान पर एक ही धनी व्यक्ति हो तो वह चारों ओर से डाकुओं के हमले का निशाना बन जाता है। इसी प्रकार यदि एक ही तन्दुरुस्त व्यक्ति हो जिसके चारों ओर सभी बीमार हों तो वह भी सुरक्षित नहीं है। अतः हमारी साधना के दो पहलू हैं, एक है हमारा अपना विकास - और दूसरा, यह प्रार्थना कि हमारे साथ सभी का विकास हो, जिससे हमसे कोई ईर्ष्या न करें, हमारी उन्नति पर किसी की नज़र न लगे, न कोई जलन हो न स्वार्थपरता। हम सभी का उत्थान इसी तरह से हो - हालाँकि यह भी सार्वभौमिक प्रार्थना का एक स्वकेन्द्रित पक्ष है।

दूसरा पक्ष है, "प्रभु, यदि मैं यहाँ रह भी जाऊँ तो कम से कम उन्हें ऊपर जाने दो, ताकि उनमें से कोई बाद में मुझे भी ऊपर उठा सके।" केवल वही व्यक्ति जो गिर गया है, जानता है कि उसके चारों ओर अवश्य ही कोई होना चाहिए, जो उसे उठा सके। इसमें भी स्वार्थपरता का कुछ अंश है।

उच्चतम पहुँच उस सन्त की है जो कहता है : मैं शाश्वत रूप में यहाँ तब तक रहने के लिए तैयार हूँ, जब तक मैं लोगों का उत्थान कर सकूँ।" केवल वही इस तरह से प्रार्थना कर सकता है, जिसके लिए बड़े-छोटे का, आध्यात्मिक - अनाध्यात्मिक का, स्वर्ग-नरक आदि का अन्तर मिट चुका हो। तो जब हम अपनी व्यक्तिगत साधना करते हैं तब हमारा दिन-प्रतिदिन आध्यात्मिक विकास होता है। जब हम नौ बजे की प्रार्थना करना जारी रखते हैं, तो हमारी साधना में थोड़ी-थोड़ी सार्वभौमिकता आने लगती है। और हमारी आध्यात्मिक उन्नति, हमारी सार्वभौमिक प्रार्थना के दृष्टिकोण से आये परिवर्तन से मेल खाती है जहाँ हम पूर्ण स्वार्थपरता से आंशिक स्वार्थपरता और फिर पूर्णरूप से दूसरों के कल्याण के लिए प्रार्थना करते हैं।

**कोई बीमार है तो कैसे प्रार्थना करनी चाहिए?** जब हम अपने लिए माँगते हैं, तो वह याचना है और जब किसी अन्य के लिए माँगते हैं, यह कभी भी याचना नहीं होती। यह हमारा अधिकार है और स्वयं प्रेम द्वारा दिया गया दायित्व भी है। जब हम प्यार करते हैं, तो हमें उनके लिए माँगना होता है। हमें अपने लिए माँगने के लिए अनुमति कभी नहीं है। तो देखिए इसमें एक सूक्ष्म अन्तर है कि जब आप अपने लिए प्रार्थना करते हैं, तो वह स्वयं के लिए भीख माँगने जैसा होता है और जब दूसरों के लिए प्रार्थना करते हैं तो वह प्रार्थना सर्वशक्तिमान के लिए होती है। दूसरे के लिए हम कहते हैं, 'हे मालिक! इस पर दया करें! मालिक इसे आशीर्वाद दें।' इसमें कोई अन्तर नहीं है। यह प्रार्थना का दूसरा पहलू है।

हमें इस बात में भेद नहीं करना चाहिए कि कौन हमारी प्रार्थना का पात्र है और कौन नहीं। मुझे एक परिवार याद आता है जहाँ दो बच्चे बीमार थे। एक बहुत ज्यादा बीमार था - मरणासन्न - और दूसरा बीमार नहीं था, बल्कि उसे थोड़ा-सा बुख़ार था। सारे लोग इस मरणासन्न बच्चे के स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना कर रहे थे। किन्तु सातवें दिन एक विचित्र बात हुई। मरणासन्न बच्चा ठीक होने लगा और वह बच्चा जो अधिक बीमार नहीं था, मर गया। इसीलिये समझदारी इसी में है कि सबके लिये प्रार्थना की जाये। मेरी समझ में यह जानने में हम समर्थ नहीं हैं कि किसकी मृत्यु होने वाली है और क्या इसको प्रार्थना से रोका जा सकता है।

इसमें एक और बात है जिसे समझना थोड़ा कठिन है, हम अधिकतर मानवीय सहानुभूति, मानवीय प्रेम और इस तरह की चीज़ों से लोगों से सम्बद्ध रहते हैं: क्या ऐसे लोगों के लिये प्रार्थना करना उचित है? अगर हमने संस्कारों के सिद्धान्त को सही ढँग से समझ लिया है और यह जान लिया है कि व्यक्ति का जीवन उसके संस्कारों के अनुरूप ही चलता है तो निश्चय ही हमारा विवेक हमें यही सलाह देगा कि हम संस्कारों के इस क्रम में हस्तक्षेप न करें। इस

समय मैं केवल अभ्यासियों के बारे में बात कर रहा हूँ। हमें यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिये।

हमें अपने व्यवहार में एक महत्वपूर्ण भेद कर लेना चाहिये। एक ओर जहाँ मनुष्य होने के नाते दूसरों की सहायता करना हमारा कर्तव्य है, वहीं दूसरी ओर ईश्वरीय इच्छा को अन्तिम वस्तु के रूप में स्वीकार करना या यों कहें कि परिणाम को ईश्वर पर छोड़ देना ही हमारी विवेकशीलता है। मैं समझता हूँ कि चूँकि लोग इन दोनों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींच पाते इसलिये भी उनके मन में इस तरह के तमाम प्रश्न उठते हैं।

क्रम-विकास का नियम कहता है "जो तुम्हें बनना चाहिए वह बनो।" फिर तुम उन लोगों की सहायता करने की स्थिति में हो सकते हो, जिनको सहायता की आवश्यकता है। नहीं तो हम एक कमज़ोर तरीक़े पर निर्भर होते हैं - प्रार्थना। बेशक प्रार्थना बहुत प्रभावशाली है, परन्तु एक कमज़ोर व्यक्ति जो स्वयं अपनी सहायता भी नहीं कर सकता, उसकी प्रार्थना? जब एक गुरु प्रार्थना करता है तो वह ईश्वर से की जानेवाली एक ऐसी माँग है जिसे ईश्वर इनकार नहीं कर सकता।

सो उस स्थिति में चाहे प्रार्थना के माध्यम से या चाहे दूसरों के जीवन में सीधे हस्तक्षेप द्वारा, दोनों तरह आप उनकी सहायता कर सकते हैं। यह दुधारी क्षमता आप में पैदा हो जाती है। जब हम कमज़ोर होते हैं, तब न तो हम अपनी और न ही दूसरों की सहायता कर सकते हैं। न ही हम स्थिर और भक्तिपूर्ण दृढ़ भाव से प्रार्थना कर सकते हैं जो ईश्वर का ध्यान आकर्षित कर सके।

* * * * *

# ध्यान

राजयोग का मतलब है, योगों का राजा। राजयोग में हम सामान्यतया ध्यान से शुरू करते हैं। इसमें एक बहुत ही गूढ़ दर्शन निहित है। लोग प्रश्न कर सकते हैं कि राज-योग की प्रथमावस्था में ही ध्यान से आगे बढ़ने की आवश्यकता क्यों है? उत्तर बिलकुल सीधा-सादा है। अब हम एक बिन्दु पर अपने को समेकित कर रहे हैं ताकि हमारा वैयक्तिक मन इधर-उधर भटकने के स्वभाव को, जो उसने बना लिया है, छोड़ दे। इस अभ्यास के द्वारा हम अपने वैयक्तिक मन को सही राह पर ले आते हैं वह अब अपने स्वभाव को रूपान्तरित कर रहा है। जब यह हो जाता है तब हमारे विचार सहज ही इधर-उधर नहीं भटकते।

सहज मार्ग की प्रशिक्षण प्रणाली में हम पतंजलि-योग के सातवें सोपान, ध्यान से प्रारम्भ करते हैं और इसके अभ्यास के लिए हम अपने मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करते हैं। उसके पूर्व के सोपान अलग से नहीं लिए जाते, पर जैसे-जैसे हम ध्यान में आगे बढ़ते हैं वे स्वतः ही आते जाते हैं। इस प्रकार से हमारे बहुत सारे श्रम और समय की बचत हो जाती है।

**ध्यान को किसी एक चीज़ पर निरन्तर लगाने या उसके बारे में निरन्तर सोचने के अर्थ में परिभाषित किया जा सकता है।** इसलिए एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति किसी चीज़ के बारे में निरन्तर विचार कर रहा है वह ध्यान में लगा है। पूर्व और पश्चिम दोनों के ही प्राचीन गुरुओं ने कहा है कि मनुष्य जैसा ध्यान करता है, वैसा ही बनता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हम जिसका या जिस पर ध्यान करते हैं, वही पाते हैं या वैसे ही हो जाते हैं। इस सूत्र को उलट दिया जाये तो हम जो कुछ बनना चाहते हैं उसका ही ध्यान करें, उसके अलावा और किसी का भी नहीं। इसलिए

यदि हमारा लक्ष्य अनन्तसत्ता या उस परमतत्व से एकाकार है तो ध्यान की वस्तु वह परमसत्ता ही होनी चाहिए, और कुछ नहीं।

**ध्यान के लिए स्थान :** ध्यान के लिए एक निश्चित स्थान रहे, एक विशेष आसन हो, एक निश्चित समय हो। इससे एक वातावरण बनता है, जिसमें आते ही आप स्वतः ध्यानशील, मननशील स्थिति में आ जाते हैं। अतः वह निश्चित स्थान जिसे हम ध्यान के लिए आरक्षित रखते हैं, उसे भी आप एक आश्रम कह सकते हैं।

**आसन :** सबेरे एक घंटे के लिए सहज रूप में एक सरल आसन लगाकर बैठें। मुद्रा सदा वही होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि इस प्रकार वह अपने को उस महान शक्ति से संयुक्त कर लेता है जिसे वह अपने उद्देश्य विशेष की प्राप्ति के लिए प्रारम्भ में ही ले लेता है। अतः वास्तविकता से संयुक्त वह रूप, उसे उसके आरम्भिक अभ्यास में अत्यधिक सहायक होता है।

बहुत प्राचीन काल से ही, ध्यान की अवस्था में रीढ़ की हड्डी, गरदन और सिर एक सीधी अवस्था में होना अत्यन्त लाभदायक माना गया है क्योंकि ऐसा विश्वास रहा है कि दिव्य कृपा की धारा इस मुद्रा में अभ्यासी पर सीधे उतरती है। परन्तु हमारी पद्धति में इस पर विशेष बल नहीं दिया जाता। मैं अभ्यासियों को सामान्य तौर पर प्राकृतिक रूप से सरल आसन में बैठने की सलाह देता हूँ। वे लोग भी जो दृढ़ और सीधी मुद्रा अपनाते हैं, मन की आनन्ददायक लवलीनता प्रारम्भ होने पर अपने आप ही थोड़ा आगे की ओर झुक जाते हैं। इसलिए चेतना की उच्चतर अवस्थाओं तक पहुँचने के लिए भी इसे अधिक प्राकृतिक माना जा सकता है। सत्य तो यह है कि एक अपेक्षाकृत कम महत्व की बात पर किसी प्रकार का विवाद, अप्रासंगिक प्रतीत होता है।

**ध्यान के लिए उचित समय :** ध्यान के लिए प्रातः भोर में बैठना अच्छा होता है, अथवा यदि यह सम्भव न हो तो कभी भी अभ्यासी की सुविधानुसार निश्चित समय पर

बैठना चाहिए। बाहरी चीज़ों से परेशान नहीं होना चाहिए बल्कि अपने कार्य में संलग्न रहना चाहिए और ऐसा सोचना चाहिए कि अभ्यास में अधिक लीन हो जाने की आवश्यकता महसूस कराने में वे एक प्रकार से सहायक हो रहे हैं। पूरे चौबीस घंटे में, सुबह 2 से 4 बजे के बीच का समय ध्यान के लिए बहुत अच्छा समय है।

**ध्यान एक घंटा क्यों करना है?** शुरू-शुरू में जब आप ध्यान में बैठते हैं तो ज़रूरी नहीं है कि उस एक घंटे में एक मिनट के लिये भी आप ध्यान में बैठ पायें। ध्यान करने में हम धीरे-धीरे समर्थ होते हैं। जब हम यह शुरू करते हैं तो उस नयी स्थिति से अपना समायोजन बिठाने में, अपने मन को नियन्त्रित करने में, उसे ध्यान के विषय पर ले जाने में और उसे वहाँ बनाये रखने में ही हमारा अधिक समय बरबाद होता है।

पहले हमें अपने शरीर को एक सुविधाजनक स्थिति में रखना होता है। अकसर यह देखने में आता है कि ध्यान में पूरे समय लोग शरीर को ही एक स्थिति में नहीं रख पाते। सुविधापूर्ण स्थिति में लाने के लिये वे शरीर को ही तोड़ते-मरोड़ते रहते हैं। फिर मन की शक्तियों को, इन्द्रियों को व्यवस्थित रखने में समय तो लगेगा ही।

अगर हम इन बातों पर विचार करें तो पाते हैं कि ध्यान की ठीक स्थिति में आने में हमें समय लगता है और हमारी प्रगति तभी शुरू होती है जब हम सही ढँग से ध्यान करने लगते हैं। ध्यान की यही विशेषता है कि यह अनन्त सम्भावनाओं के द्वार खोलता है, लेकिन यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम इसे कैसे शुरु करते हैं। इसीलिये गुरुदेव कहते हैं कि प्रतिदिन ध्यान करो। धीरे-धीरे मन की स्थिति को नियन्त्रित करने की हमारी क्षमता बढ़ती जाती है।

ध्यान का अभ्यास प्रतिदिन करना है। उन्होंने यह भी कहा कि ध्यान यथासम्भव एक ही समय और एक ही जगह पर करना चाहिये। ऐसा करने पर हम पाते हैं कि उस जगह नियत समय पर आते ही हम स्वतः ध्यान में

चले जाते हैं। जब गायों को बिजली की मशीनों से दुहा जाता है तब अगर उन्हें निश्चित समय पर नहीं दुहा जाये तो उस समय उनके थन से दूध स्वतः गिरने लगता है। यही नियमितता का महत्व है।

**क्या हम एक समय में एक घंटे से अधिक ध्यान कर सकते हैं?** हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। हमें अपने ध्यान के समय पर एक प्रकार का विवेकपूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए। कभी-कभी हो सकता है कि हम एक घंटे से अधिक ध्यान कर लें। परन्तु यदि सदा ही ऐसा होता है तो इस आदत को ख़तम करने के लिए हमें शायद घड़ी में अलार्म लगाकर बैठना चाहिए। क्योंकि सहज मार्ग में एक सिटिंग में बहुत देर तक ध्यान करना दिमाग़ पर दबाव डालता है। बाबूजी ने कहा है कि हम एक समय में एक घंटे तक ध्यान कर सकते हैं। यदि समय हो तो एक दिन में जितनी बार चाहें ध्यान कर सकते हैं, परन्तु एक समय में एक घंटे से अधिक नहीं।

यह भी सम्भव है कि एक घंटे की सिटिंग में लगे जैसे अभी पाँच मिनट ही हुये हैं और पाँच मिनट की सिटिंग में लगे जैसे एक घंटा हो गया हो। इसका प्राणाहुति की गुणवत्ता से कोई लेना-देना नहीं है। यह केवल इस बात को प्रदर्शित करता है कि सांसारिकता के हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान में, जैसा कि हम उसे समझते हैं, परिवर्तन हुआ है।

**ध्यान करते समय हमारे लिये आँखें बन्द करना क्यों ज़रूरी है?** खुली आँखों से हम बाह्य जगत को देखते हैं। आँखें बन्द करने पर हम अपने ध्यान को अपने आन्तरिक स्व की ओर मोड़ सकते हैं। इसीलिए ध्यान करते समय हमें सदा ही आँखें बन्द करना ज़रूरी है।

**ध्यान का उद्देश्य क्या है?** ध्यान एक क्रिया है। यह प्रक्रिया हम एक निर्दिष्ट ध्येय, पूर्व निश्चित ध्येय तक पहुँचने के लिए अपनाते हैं। मैं नहीं कहता, "ठीक है, यह गाड़ी जा रही है। यह कहीं भी जाये, चलो मैं इसी में बैठ जाऊँ। विजयवाडा जाने के स्थान पर मैं हावड़ा पहुँच

जाऊँगा और वहाँ भी मैं इसीलिए उतरूँगा क्योंकि गाड़ी जंक्शन पर या अन्तिम स्टेशन पर पहुँच गई है।"

ध्यान, अपने प्रयासों से मन का नियमन करने के उद्देश्य से, मन के प्रयोग करने का प्रशिक्षण है। यदि यह स्वतः ही नियमित हो जाये तो हमें ध्यान करने की क्या ज़रूरत है? हम पहले से ही ऋषि हैं। जैसा कि बाबूजी ने कहा है, ध्यान का पूरा उद्देश्य जीवन की इस असलियत को उलट देना है कि मन हमारा मालिक है। हमें अपने मन का मालिक बनना है। यह केवल इतना ही है कि बस उलटना है। परन्तु यह काम हमें ही करना है। यह घुड़सवारी करने के समान है। आपको उस पर सवारी करनी है, उसे प्रशिक्षित करना है। आप किताब दिखा कर नहीं कह सकते, "मुझे अपने ऊपर ठीक से सवारी करने दो। एक अच्छे घोड़े को ऐसा ही होना चाहिए।" कई बार गिरने की जोखिम उठा कर भी आपको उस पर चढ़ना होगा। आपको बड़े हलके से चढ़ना होगा परन्तु लगाम पर पूरा नियन्त्रण रखना होगा। आपको दयालु होना चाहिए, साथ ही आपको दृढ़ भी होना चाहिए।

हमारी साधना द्वारा मन का नियमन होना चाहिए और साधना के प्रारम्भ से ही मन को अनुशासित करने पर ही यह सम्भव हो सकता है। इसका मतलब है, अधिक अनुशासन और अन्ततः पूर्ण अनुशासन साधने के लिये इस थोड़े से प्रारम्भिक अनुशासन की ज़रूरत है। अतः इस थोड़े से अनुशासन की ही हमें ज़रूरत है। पहले शारीरिक अनुशासन - कि ध्यान के लिए समय पर आया करें, फिर मानसिक अनुशासन - कि उस पर ध्यान करने की कोशिश करें, जिस पर ध्यान करना चाहिए, जिससे हम अपने मन को अधिकाधिक नियमित करते हुये नियन्त्रित करने की क्षमता हासिल कर सकें, जिसके परिणाम स्वरूप हममें अधिकाधिक बाह्य अनुशासन आ सके। क्योंकि व्यक्ति के कार्यों और इच्छाओं का मूल कारण उसका मन ही है।

इसीलिए यदि हम स्वयं को अनुशासित करना चाहते हैं, तो इसके लिए ध्यान ही सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है। क्योंकि

शुरू में यह मानसिक अनुशासन सम्भव बनाता है, उससे शारीरिक अनुशासन होता है; इससे हमारे जीवन का नियमन होता है तथा वह व्यवस्थित बनता है; अधिकाधिक मानसिक अनुशासन पैदा करता है, परिणामतः एक स्वचालित चक्र बन जाता है। एक ऐसा चक्र जो ख़ुद को पोषित करता है, प्रोत्साहित करता है, जिससे ध्येय को प्राप्त करना हमारे लिये सम्भव हो जाता है। इसीलिए इस थोड़े से अनुशासन के बिना, ध्येय प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः ध्येय तक पहुँचना तभी सम्भव है जब हमारे भीतर कुछ अनुशासन हो।

यदि मानसिक अनुशासन न हो तो शारीरिक अनुशासन कभी नहीं आ सकता। यही कारण है कि हम ध्यान करते हैं मन पर नियन्त्रण पाने के लिये, उसे अनुशासित करने के लिए, यह सम्भव बनाने के लिए कि मन को जहाँ हम चाहें वहाँ लगाएँ, ये मन को लगाना प्रयोग में लाना नहीं है, मन को लगाएँ - और उससे मन की शत-प्रतिशत शक्ति प्राप्त करें। इसीसे योग की इस प्रत्याशा को पूरा करना सम्भव होता है कि योगी हर कार्य कुशलता से सम्पादित करता है।

हम दूसरे बिन्दुओं पर ध्यान क्यों नहीं करते? दोनों भौंहों के बीच - इस बिन्दु पर एक चक्र है, यहाँ एक योगिक केन्द्र स्थित है जो पूरे तन्त्र में अस्तित्व की शक्ति को, जिसे संस्कृत में **शक्ति** कहते हैं वितरण के लिए ज़िम्मेदार है। जब हम इस पर ध्यान करते हैं तो हमें शक्ति को नियन्त्रित करने की क्षमता प्राप्त होती है। यही बात नासाग्र पर ध्यान करने में लागू होती है, जहाँ हमें बताया गया है कि आप कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं, जैसे आँखों से जिन वस्तुओं को नहीं देखते, उन वस्तुओं को देखने की क्षमता; नाक से जिन्हें सूंघ नहीं सकते, उन्हें सूंघने की क्षमता।

सहज मार्ग में आध्यात्मिक विकास से शक्ति का कुछ लेना-देना नहीं है। वास्तव में व्यक्ति उच्चतम बिन्दु तक विकसित होता है और एक दिन इस शरीर को छोड़कर

आगे की यात्रा पर चला जाता है। तमाम शक्ति, तमाम उपलब्धियाँ यहीं पीछे छूट जाती हैं। तो शक्ति प्राप्त करके कोई क्या करेगा? शक्ति वह वस्तु है जिसका उपयोग कोई तब तक ही कर सकता है, जब तक वह भौतिक संसार में, लौकिक अस्तित्व में है। लेकिन इसे तो नष्ट होना है।

हम दूसरी वस्तुओं या रूपों पर ध्यान क्यों नहीं करते? मैं दिव्यता पर ध्यान कैसे करूँ? मेरे मालिक कहते हैं, जब तक आप सीमित रूपों पर, सीमित नामों पर ध्यान करते हैं तो यह सीमित है। जिस क्षण आप कहते हैं शिव, वह केवल शिव है; हो सकता है उसके हाथ में त्रिशूल आदि हो और गले में साँप की माला। जिस क्षण आप कहते हैं विष्णु, वह केवल विष्णु है। इसीलिए मेरे मालिक कहते है, "इन रूपों से आगे बढ़ो, ये केवल प्रकृति के कार्यकर्ता हैं। एक स्रष्टिकर्ता देवता है, एक पालनकर्ता देवता है और एक संहारकर्ता देवता है। ये सब कार्यकर्ता हैं। परन्तु मूल तत्व वह है जिसे आप **'परा'** कहते हैं, जिसका न नाम है, न रूप है, न गुण है।" 'उसका' कोई रूप नहीं है, इसीलिए हम रूप पर ध्यान नहीं करते। 'उसका' कोई नाम नहीं है अतः हमारी पद्धति में कोई मन्त्र नहीं है।

इसी प्रकार जब हम दो पद्धतियों से ध्यान करें या दो गुरुओं को मानें या दो परस्पर विरोधी मानसिक चीज़ों से आगे चलें तो स्वयं को ही हानि पहुँचा रहे हैं, चाहे अपने आप में वह अच्छा भी हो। तो कृपया ध्यान रखिए जो भी पद्धति आप स्वीकार करें उसी के अनुसार ध्यान करें। अगर आप सहजमार्ग साधना चाहते हैं तो उसे पूर्णतः करें, बाकी सब कुछ त्याग कर। हमारे दो ईश्वर या दो पद्धतियाँ नहीं हो सकतीं और न ही हमारे दिमाग़ में दो साथ-साथ चलने वाली धाराएँ हो सकती हैं। यह तो शाकाहारी माँस बनाने जैसा है। यह सम्भव नहीं।

**हम हृदय पर ध्यान क्यों करते हैं?**

1. यह दिव्यता का स्थान है। इसलिये जब आप अपनी पद्धति द्वारा दिव्यता तक पहुँचना चाहते हैं, तो आप हृदय

में उसकी उपस्थिति द्वारा उसकी ओर बढ़ते हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है, "मैं सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता हूँ।"

2. यह वह है जिसके द्वारा मानवीय जीवन, मानवीय लक्षण परिभाषित किया जाता है।

3. यह वह है जो हमारे जीवन को इस रूप में नियन्त्रित करता है कि यदि वह धड़कन है तो हमारा अस्तित्व है, यदि वह रुक जाये तो हम समाप्त।

4. यह वह बिन्दु है जहाँ से खून का दौरा शुरू होता है और समाप्त होता हैं। आप जानते हैं खून मानव तन्त्र का प्राणाधार घटक है क्योंकि यही है जो शरीर के हर भाग तक पोषक तत्व पहुँचाता है और उनसे अशुद्धियाँ इकट्ठी करके फेफड़ों में पहुँचाता है जो इसे शुद्ध करता है और पूरे तन्त्र में पुनः संचारित करता है।

अतः हृदय और लहू हमारे जीवन के अति आवश्यक घटक हैं और यदि यहाँ शुद्धिकरण किया जाता है तो इसका प्रभाव पूरे तन्त्र पर पड़ता है। और इसीलिए हम हृदय को शुद्ध करते हैं, हृदय में प्यार भरते हैं, यही है जो हम सहजमार्ग में करने का प्रयास करते हैं। इस तरह एक प्रकार से, एक विलक्षण बल को, प्रेम की शक्ति को, मालिक की आध्यात्मिक उपलब्धियों को, हृदय में प्रवेश कराकर, व्यापकता प्रदान करने का प्रयास करते हैं, जहाँ से वह पूरे तन्त्र में मिल जाती है।

मालिक अपने आपको, अपने बीज को हृदय के अन्दर डाल देते हैं। इसलिए यदि हम उस बीज को उस तरह से स्वीकार करते हैं जिस तरह करना चाहिए, तो ऐसा चमत्कार होता है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति, सही मायने में मालिक का बालक बन जाता है।

हमें अपने हृदय की स्थूलता को हटाना है, चट्टान को फिर से द्रवीभूत करना है, नरम बनाना है। नरमी का पहला लक्षण क्या है? आँसू। लोग ध्यान करते हैं, उन्हें पता नहीं चलता कि उनकी आँखों में आँसू कैसे आ जाते हैं और

वे रोने लगते हैं। यह दिल के पिघलने का पहला लक्षण है। एक बार जब चट्टान सा दिल पिघल जाता है, उसकी कड़ाई जाने लगती है, और वह मुलायम व नरम हो जाता है, मालिक उसे अपनी इच्छानुसार ढाल सकते हैं।

सहज मार्ग हृदय पर काम करता है, सहज मार्ग हृदय से काम करता है। हम हृदय से हृदय में प्राणाहुति देते हैं। हम हृदय का परिवर्तन करते हैं। मनुष्य, हृदय के सिवाय और क्या है? मनुष्य का वर्णन इसी प्रकार किया जाता है – उदार दिलवाला, अच्छे दिलवाला, क्रूर दिलवाला, कठोर दिलवाला, नरम दिलवाला। इन्हीं शब्दों से मनुष्य को जाना जाता है।

आज हम अपने आप को समझ नहीं पाते तो औरों को क्या समझेंगे? जो स्वयं को समझता है, वही दूसरों को समझ सकता है। जो स्वयं को नहीं समझता, वह कुछ भी नहीं समझ सकता। इस समझ को कैसे पाया जाये? बैठकर ध्यान कीजिये। अपना ध्यान हृदय की ओर उन्मुख कीजिये और फिर देखिए कि उसके अन्दर कितने विशाल, अद्भुत रहस्य भरे पड़े हैं।

**मन हृदय का रूप धारण कर लेता है :** हम ध्यान से अपने बोध के उपकरण को स्पष्ट बनाते हैं और बाबूजी ने कहा है कि मन आपके पतन और आपकी उन्नति दोनों का उपकरण है। अगर यह ग़लत दिशा में जाता है, तो इससे ज्यादा आपका बुरा अन्य कोई नहीं कर सकता। और दिव्यता की उच्चतम अवस्था तक ले जाने में भी इससे अधिक सहायक कोई अन्य नहीं हो सकता। इसीलिए राजयोग की पद्धति में हम इसका उपयोग करके, इसपर अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं और फिर इसका प्रयोग करते हैं। ऐसा करने पर सारी चीज़ें हृदय की ओर स्थानान्तरित हो जाती हैं। योग के मनोविज्ञान की शब्दावली में हम कहते हैं, अब हृदय ही मन हो जाता है। हम हृदय से सोचते हैं, हृदय से बोलते हैं, हृदय से सुनते हैं, हम हृदय ही बन जाते हैं।

यही आध्यात्मिकता का चमत्कार है कि हम अपने मस्तिष्क को नियमित करके, उसके ऊपर पूर्ण नियन्त्रण पाकर, अपने अस्तित्व को पूर्ण बनाते हैं। हम अब अपने मन के उपकरण को हृदय में स्थानान्तरित करने के अपने विवेक को पहचानने में समर्थ हो जाते हैं। तब हमारा हृदय ही सब कुछ हो जाता है। अब जाकर सच्ची आध्यात्मिकता की शुरुआत होती है।

ध्यान प्रतीक्षा का पर्याय है : अपने मन को ख़ाली कीजिए, जो कुछ इसमें है - अच्छा, बुरा, वांछनीय, अवांछनीय सब कुछ निकाल कर साफ़ कर दीजिए। दरवाज़ा खोलिये। धैर्य रखिये। प्रतीक्षा कीजिए। सब कुछ हमारे अन्दर है। हमारे संस्कार - इसके लिए हमें चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं है। बस, इनका निर्माण रोक देना है। जो आपके अन्दर है, वह मैं साफ़ कर देता हूँ और आपको ऐसा उपयुक्त वाहन बना दूँगा, जिसमें आपका यह हृदय विकसित होकर सही स्थान ले सके।

अपने हृदय को साफ़ करें, शुद्ध करें, सब कुछ तैयार रखें और मालिक के आने की प्रतीक्षा करें। **वास्तव में प्रतीक्षा का अर्थ है, किसी प्रक्रिया को पूरा होने का समय देना।** जैसे कि बीज डालकर फिर उसके निकलने की प्रतीक्षा, पौधे को पानी देकर उसके परिणाम की प्रतीक्षा। आलू को कुकर में उबालने के लिए डालकर फिर उसके उबलने की प्रतीक्षा। प्रतीक्षा बहुत कुछ समझने की शक्ति को दर्शाती है। जो व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है, उसमें विश्वास है और इस कारण उसमें प्रतीक्षा करने का धैर्य है। उसमें विश्वास है कि जो आरम्भ हुआ है वह पूरा भी होगा। वह रुक नहीं सकता। उसमें विश्वास का तत्व आ जाता है। प्रतीक्षा की क्षमता दृढ़ विश्वास से ही आती है। दृढ़ विश्वास पहाड़ को भी हिला सकता है। अगर मुझे "उनमें" श्रद्धा है, तो "उनकी" शक्ति को आना ही पड़ेगा। यह ऐसा ही है कि जहाँ शून्यता है, वहाँ उनकी शक्ति खिँच आती है।

प्रतीक्षा की कोई सीमा नहीं। इस कारण प्रतीक्षा में अनन्त की विशेषता आ जाती है। काम करने में हम समय का कुछ अंशों में प्रयोग करते हैं, जिन्हें हम क्षण, मिनट या घंटे कहते हैं। परन्तु जो प्रतीक्षा करता है वह कुछ हद तक अनन्त में चला जाता है। इस कारण गुरुदेव वे हैं जो अनन्त तक प्रतीक्षा कर सकते हैं।

प्रतीक्षा करने की यह क्षमता हमारे धैर्य और विश्वास को दर्शाती है। देर तक प्रतीक्षा की क्षमता हमारे अधिक विश्वास को दर्शाती है। अनन्त तक प्रतीक्षा करने की क्षमता, अनन्त विश्वास का प्रतीक है। हमें यही क्षमता प्राप्त करनी है। कृपया याद रखिए कि जीवन प्रतीक्षा है। अगर हम उन कार्यशील क्षणों को ही जीवन समझ लें तो हम जानवरों से भी मूर्ख हैं। प्रतीक्षा प्रकृति का नियम है। पाना तुम्हारे वश में नहीं। जब हम प्रतीक्षा करते हैं, वह देता है।

बिना कुछ किये हम सब कुछ होने दे रहे हैं। हमें अपने अन्दर ईश्वर को बुलाना नहीं होता, वे तो वहाँ हैं ही। हमें अपनी सफ़ाई भी नहीं करनी होती। इसके लिए तो मालिक, और प्रशिक्षक लोग हैं ही। हमें केवल अपने आपको समर्पित कर देना है और धीरज बनाये रखना है। अपनी ग्राह्यता बढ़ानी है। **बिना कुछ किए, घटनायें घटे, सब कुछ होता रहे, इसका एकमात्र उपाय है - ध्यान।**

**ध्यान की पद्धति व विषयवस्तु :** हमारी प्रणाली में अभ्यासी को यह सोचते हुए हृदय पर ध्यान की सलाह दी जाती है कि हृदय में ईश्वरीय प्रकाश विद्यामान है, परन्तु उसे निर्देश दे दिया जाता है कि वह प्रकाश को किसी विशेष रूप या आकृति में, जैसे बिजली का बल्ब या मोमबत्ती आदि के रूप में, देखने की चेष्टा न करे। क्योंकि उस हालत में वहाँ दीख पड़ने वाला प्रकाश वास्तविक न होकर स्वयं उसकी सृजनात्मक कल्पना का परिणाम मात्र होगा। अभ्यासी को प्रकाश का एक सुझाव मात्र लेकर चलने को कहा जाता है जिसके मूल में दिव्यता का विचार

निहित हो। परिणामतः हम उसी सूक्ष्मतम वस्तु पर ध्यान करते हैं जिसकी प्राप्ति हमें करनी होती है।

हृदय पर ध्यान करने की विधि यह है कि इसमें ईश्वरीय प्रकाश के बारे में सोचा जाए। जब आप इस प्रकार ध्यान करना प्रारम्भ करें तब आप केवल यह सोंचें कि ईश्वरीय ज्योति आपको आकर्षित कर रही है। यदि ध्यान के बीच अन्य विचार आते रहें तो उनकी परवाह न करें। उन्हें आने दीजिए पर आप अपने कार्य में लगे रहिए। अपने विचारों और भावों को बिना बुलाये मेहमान समझिये। इस पर भी यदि वे आयें तो ऐसा मानिए कि वे मालिक के हैं, आपके नहीं। इस प्रकार का ध्यान अत्यन्त प्रभावशाली होता है और इच्छित परिणाम लाने में कभी भी असफल नहीं हो सकता।

आपको केवल ध्यान करना चाहिए। आमतौर पर जो विचार ध्यान में आते हैं, उनसे आपको संघर्ष नहीं करना चाहिए। एकाग्रता, ध्यान का सहज और स्वाभाविक परिणाम है। जो लोग ध्यान के बजाए एकाग्रता पर बल देते हैं और उसी पर ज़बरदस्ती अपना मन लगाते हैं, आमतौर पर असफल ही होते हैं।

हृदय के अन्दर प्रकाश पर ध्यान कीजिए, उसे ईश्वरीय प्रकाश मानकर ध्यान कीजिए क्योंकि ईश्वर हमारे हृदय में है। उनकी अधिकाधिक याद किया कीजिए। उनकी इतनी याद कीजिए कि आप लगातार उनकी याद कर सकें, क्योंकि आप जैसा सोचते हैं, वैसा बनते हैं। हमारी पद्धति में ध्यान उस निराकार, परमसत्ता पर है क्योंकि उससे कम किसी चीज़ पर ध्यान करने से आपकी उपलब्धि भी उतनी ही कम रहेगी जो हमारे ध्येय से दूर होगी।

मेरे गुरुदेव की यह मान्यता है कि नए अभ्यासियों के लिए निराकार परमसत्ता पर ध्यान करना बहुत कठिन होता है। अतः वे शुरू में ध्यान की वस्तु दिव्य प्रकाश बतलाते हैं। इसका तरीक़ा यह है : कल्पना कीजिए कि हृदय उसमें निवास करने वाले ईश्वर की उपस्थिति से प्रकाशमान है। मैं इस पर ज़ोर दूँगा कि यह केवल प्रारम्भ है। वस्तुतः हमें

किसी प्रकार के प्रकाश-स्रोत के रूप में, प्रकाश पर ध्यान करने की सलाह नहीं दी गयी है क्योंकि इसके ग़लत परिणाम निकल सकते हैं। यह तो तरणताल के ऊपर लगे उस तख़्ते के समान है, जिस से छलाँग लगाने पर गोताखोर को पर्याप्त संवेग मिल जाता है। छलाँग लगा लेने के बाद गोताख़ोर के लिए उस तख़्ते का कोई उपयोग नहीं रहता।

**ध्यान में आपको क्या अनुभव होता है?** ध्यान एक ऐसी गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो ईश्वर से एक प्रकार की घनिष्ठता स्थापित करने के लिए है। हम उस अमूर्त, नामरहित, रूपरहित का ध्यान करते हैं क्योंकि परमतत्व का कोई नाम व रूप नहीं है, न ही उसमें कोई गुण है। इसीलिए मेरे मालिक की महत्वपूर्ण शिक्षा यह है कि ईश्वर की अनुभूति केवल उसकी उपस्थिति से हो सकती है। और यह उसकी उपस्थिति ही है जो ध्यान के दौरान अनुभव करने का प्रयास करते हैं। और यह कहा गया है कि जिस समय हम आँखें बन्द करके ध्यान करते हैं, हम उस दिव्य के सार तत्व को अधिकाधिक आत्मसात् करने योग्य हो जाते हैं, जिसकी हम कामना करते हैं और उत्तरोत्तर स्वयं को समुन्नत करते जाते हैं। यहाँ तक कि उनकी कृपा से, उनके आशीर्वाद से वह दिन आता है, जब हम लगभग उन जैसे बन जाते हैं।

हृदय में प्रकाश ही सबसे सूक्ष्मतम संकल्पना है। उसका कोई रूप नहीं है, कोई भार नहीं है, कोई घनत्व नहीं है। तो उससे शुरू करके जब हमारा ध्यान गहरा होता जाता है, वह हमारे अन्तर से अपने आपको प्रगट करता है कि ईश्वर क्या है और सच्ची दिव्यता क्या है। यह हमारी मेहनत और दिव्य कृपा, दोनों का मिला-जुला कार्य है। और एक दिन ऐसा समय आ सकता है, जब हम कह सकें, "हाँ, मुझे इसका अन्देशा हो रहा है कि यह क्या है। इसलिए नहीं कि मैंने इसे देखा है या छुआ है परन्तु इसलिए कि मैंने इसे अनुभव किया है।"

यही सबसे अभूतपूर्व अनुभव है कि मैं दिव्यता का अनुभव करता हूँ क्योंकि मैं दिव्य हूँ। तो दिव्यता - ईश्वर - ज्ञान की वस्तु नहीं हो सकता, पहचानने की वस्तु नहीं हो सकता, इन्द्रियों से पहचाना नहीं जा सकता। लेकिन जैसा कि मेरे गुरुदेव ने कहा है, जब हम ध्यान करते हैं, और वह ध्यान सटीक और सफल होता है, हम उस दिव्य स्रोत से जो भी अपेक्षित हो, क्रमशः उसे प्राप्त करने लगते हैं। इस प्रक्रिया में हम ख़ुद दिव्य बनते जाते हैं। फिर भी किसी भी हालत में वह व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि "मैं ईश्वर हूँ।" आप हर तरह से ईश्वर जैसे हो सकते हैं, हर गुण में, हर चीज़ में जिसकी आप कल्पना कर लें, लेकिन ईश्वर - ईश्वर है और आप उसके दीन-हीन शिष्य मात्र हैं। हो सकता है आप उच्चतम स्तर तक ख़ुद दिव्य हो गये हों, फिर भी 'वह - वह है, मैं केवल मैं।'

हमेशा जो बात हो रही है, उसके प्रति जागरूक रहिए, संवेदनशीलता बढ़ेगी। कई लोग ध्यान करते हैं लेकिन दुख की बात है कि उनमें से अधिकतर लोग नहीं जानते कि उनके अन्दर क्या हो रहा है। क्योंकि वे इस बात पर ग़ौर नहीं करते कि उनके अन्दर ध्यान के समय हो क्या रहा है। व्यक्ति को प्राणाहुति और हमारे अन्दर उसके द्वारा होने वाले कार्य के प्रति जागरूक रहना चाहिए। तभी ध्यान का सच्चा आनन्द प्राप्त होने लगता है। चाहे व्यक्ति को उसका अनुभव हो या न हो, प्राणाहुति उस पर कार्य करेगी। लेकिन सच्चा आनन्द तभी मिलता है जब हम यह जान पाते हैं कि हमें क्या मिल रहा है।

**क्या ध्यान के तुरन्त बाद सिरदर्द होना, गुस्सा आना, बेहद नींद आना सामान्य है?** यह सामान्य नहीं है, लेकिन कभी-कभी हो सकता है। यदि आप ध्यान में बहुत गहराई में चले जाते हैं तो उनींदापन आ सकता है। जब हम ध्यान की गहराई में चले जाते हैं तो आत्मा के जीवन का हम पर अधिकार हो जाता है। और इसलिए हम निष्क्रिय रहना चाहते है और इसीलिए हम चाहते हैं कि लेटकर सो जायें या इसी प्रकार की बातें।

बहुत सालों तक, मुझे भी ध्यान के बाद बहुत तेज़ सिरदर्द हुआ करता था। ध्यान जितना गहरा होता था, सिरदर्द भी उतना ही तेज़ होता था। यदि सिरदर्द होता है तो हम उसे बरदाश्त कर लेते हैं।

जिन कारणों से उनींदापन या निष्क्रियता आती है, उन्हीं से कभी-कभी गुस्सा भी आ जाता है क्योंकि बहुत अच्छा ध्यान लगने के बाद हम आराम करना चाहते हैं, और जब हमारे मित्र या सम्बन्धी आकर हमें परेशान करते हैं तो हम चिढ़ जाते हैं। एक प्रकार से इन सब का सम्बन्ध एक ही कारण से है। परन्तु हमें इनसे चिन्तित नहीं होना चाहिए।

**ध्यान के तरीक़े :** ध्यान करने के तीन तरीक़े हैं। पहला यह कि हम अभ्यासी बनकर हृदय में ईश्वरीय प्रकाश पर ध्यान करते हैं। दूसरा इससे उच्चतर तरीक़ा है कि हम ध्यान में बैठ जाते हैं और हृदय में स्थित मालिक के रूप पर ध्यान करते हैं। एक तीसरी स्थिति भी है जब मालिक अपने अभ्यासी पर ध्यान करने लगते हैं। और ऐसा अत्यन्त विरल होता है। ऐसा व्यक्ति पैदा हो और ऐसे मालिक - तो वे सौभाग्यशाली हैं कि उन्हें ऐसा शिष्य मिले जिस पर वे ध्यान कर सकें।

**क्या हम मालिक के रूप पर ध्यान कर सकते हैं?** यह माना जाता है कि मालिक के रूप पर ध्यान करना तभी प्रारम्भ किया जाये जब वह रूप स्वतः ही हमारे सामने आ जाये और यह स्वाभाविक रूप से होना चाहिये। यदि ध्यान के लिए आप रूप को अपने सामने ज़बरदस्ती लाने की कोशिश करते हैं तो यह अस्वाभाविक होगा। निःसन्देह बाबूजी महाराज ने पहले ही दिन से अपने मालिक के रूप पर ध्यान करना शुरू कर दिया था। परन्तु हम जैसे लोगों को इन्तज़ार करना चाहिए जब तक कि मालिक के प्रति हमारी श्रद्धा, उनके प्रति हमारा प्रेम इतना हो जाए कि जब हम हृदय में प्रकाश को देखने की कोशिश करें तो वहाँ हम उन्हें पायें।

दूसरी बात यह है कि जब उनका स्वरूप हमारे सम्मुख आये तो हमें केवल उनके चेहरे का नहीं बल्कि उनके पूरे

स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। नख से लेकर शिख तक हर चीज़ ध्यान में रहनी चाहिये लेकिन जब हम कृत्रिम तरीक़े से उनके स्वरूप पर ध्यान करते हैं तो अधिकतर केवल उनके चेहरे का ध्यान करते हैं। जहाँ तक बाबूजी का सवाल था, उनके लिये यह सम्भव था क्योंकि पहली ही नज़र में बाबूजी, लालाजी के परम भक्त बन गये थे। इसलिये वे शुरू से सद्गुरु के स्वरूप पर ध्यान करने में समर्थ हो सके। यह हमारे-आपके ऊपर लागू नहीं होता।

एक तीसरी अवस्था भी है जिसमें हृदय से स्वरूप भी अन्तर्ध्यान हो जाता है। मेरी समझ में इसी अवस्था को गुरुदेव ने बिना चमक के प्रकाश की अवस्था कहा है। पहली अवस्था है : हृदय में ईश्वरीय प्रकाश की अवस्था। इसमें लोग कभी-कभी प्रकाश को ही चमकीले रूप में देखते हैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं प्रकाश के लक्षणों से रहित प्रकाश की अवस्था आती जाती है और अन्त में प्रकाश का केवल विचार मात्र बच रहता है।

इस प्रकार प्रथम अवस्था में हम स्थूल प्रकाश से एक प्रकार के सूक्ष्म प्रकाश की स्थिति में पहुँच जाते हैं। फिर भक्ति की भावना के कारण सद्गुरु का प्रवेश हमारे हृदय में होता है। ज़्यादातर अभ्यासी यहीं रुक जाते हैं। कहने का मेरा तात्पर्य यह है कि हृदय में गुरुदेव की उपस्थिति का विचार चलता रहता है।

तीसरी अवस्था में स्वरूप भी अन्तर्ध्यान हो जाता है और हृदय में कुछ नहीं बचता। न प्रकाश, न रूप, न कोई अन्य चीज़। मेरी समझ में यह अवस्था बहुत कठिनाई से और किसी-किसी को ही मिलती है। यह इसलिये भी कठिन होता है चूँकि शून्य पर ध्यान करना लगभग असम्भव है। दूसरी कठिनाई यह है कि हम सद्गुरु के स्वरूप के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ जाते हैं और उसे छोड़ना नहीं चाहते। मैं समझता हूँ कि यह तीसरी अवस्था तभी सम्भव है जब सद्गुरु के स्वरूप को प्यार किये बिना ही हम उन्हें प्यार कर सकें। समस्त प्रेम की यही माँग है कि स्वरूप के

प्रति प्रेम का रूपान्तरण उस सारतत्व के प्रति हो जाये, ज़ो रूप के परे है।

**ध्यान से हमें क्या प्राप्त होता है?** सहज मार्ग योग का पहला कदम है, "मन को एकत्रित करके उसे किरण की तरह केन्द्रित कीजिए।" ध्यान से यह सम्भव हो सकता है। हम एक वस्तु पर ध्यान करने की कोशिश करते हैं और अपनी इच्छाशक्ति से अपने मन को उसी पर केन्द्रित रखते हैं। इस प्रकार, इच्छाशक्ति के प्रयोग से हमारा मन मज़बूत होता है। इस प्रकार, इच्छाशक्ति के बार-बार उपयोग से इच्छाशक्ति बढ़कर स्वयं बेहतर कार्य कर पाती है। और जब हम इस प्रकार एकाग्रता हासिल करने में सफल होते हैं, हमारा मन, शक्तिशाली बनकर एक घनी किरण की भाँति बन जाता है जिसका केन्द्रीकरण सम्भव है। और उसके बाद वह प्रगटीकरण का एक साधन बन जाता है कि आप जिस वस्तु पर भी उसे केन्द्रित करते हैं, वह अपने आपको प्रगट कर देता है।

किसी वस्तु पर निरन्तर सोचने की क्षमता प्राप्त करके हमें अपने मन पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। अब मैं अपने मन को जहाँ चाहूँ, लगा सकता हूँ। और मुझे जिस किसी की खोज है यह उसकी सच्चाई प्रकट कर देता है। जब ध्यान अपने उत्कर्ष पर पहुँचता है, तो किसी भी चीज़ को जानने का उपकरण बन जाता है। क्योंकि अब मन परिष्कृत हो चुका है, नियमित हो चुका है। अब हम ईश्वर को जानने के अतिरिक्त, अपने मन को अन्य किसी भी वस्तु पर केन्द्रित कर सकते हैं। क्योंकि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। इसलिए एकाग्रता ईश्वर की उपस्थिति को कभी प्रकट नहीं कर सकती। एकाग्रता केवल उसी को प्रकट कर सकती है जो हमारे सामने है।

ध्यान में हम केन्द्र की ओर जाते हैं, हृदय के अन्दर देखते हैं। इसे सम्भव बनाने के लिये, हम कहते हें, "कल्पना करो कि वहाँ दिव्य प्रकाश है।" वहाँ प्रकाश है - यह मान कर बैठना है। बाबूजी ने इसे सुझाव मात्र कहा है। क्योंकि यह कुछ ऐसा है जिस पर हमें अपना ध्यान

केन्द्रित करना है, मन को अन्तर्मुखी बनने का प्रशिक्षण देना है। जब मैंने अपने मन को इस प्रकार प्रशिक्षित कर लिया तब यह बिना किसी सहारे के अनन्त में गोता लगाने में सक्षम हो सकता है। क्योंकि वहाँ कोई पदार्थ या वस्तु नहीं है। केन्द्र कोई स्थान नहीं है। यह कोई वस्तु नहीं है। यह देश और काल में स्थित नहीं है। तो इसे कैसे ढूँढ़ें? इसे कहाँ खोजने जायें? इसे कहाँ तलाश करें? कब? कैसे? क्यों? जब हम ध्यान में बैठते हैं, सब सरल हो जाता है।

# हर ध्यान, मरने का अभ्यास है

हिन्दुत्व में हम इस विचार को मान्यता देते हैं कि पैदा होते ही बच्चा मरना आरम्भ कर देता है। यह सत्य भी है। ऐसा नहीं कि वह 60 साल या 100 साल बाद ही मृत्यु को प्राप्त होगा। उसने मरना आरम्भ कर दिया है। यह वैसा ही है जैसे आप घड़ी का स्प्रिंग कसते हैं, और कसते ही वह खुलना शुरू कर देता है।

तो मृत्यु कब होती है? जैसे ही हम जन्म लेते हैं। स्पष्टतः यह मृत्यु ही है। जन्म ही मृत्यु है। यह अलग बात है कि उसमें समय लगता है। इसमें 60 साल लग सकते हैं, 3 दिन में यह सम्भव है, इसके लिए 17 साल हो सकते हैं या फिर 124 साल भी लग सकते हैं। लेकिन फिर 124 साल भी लग सकते हैं। लेकिन मृत्यु तो हो चुकी है। पर हम समझते हैं कि यही ज़िन्दगी है। अब इसके विपरीत, अगर हम विचार करें तो पाते हैं कि मृत्यु होते ही हमारे जीवन की शुरुआत हो जाती है। फिर मृत्यु से डरना और जीवन से ख़ुश होना बेवकूफ़ी नहीं तो और क्या है?

अपने निश्चित संस्कारों की वजह से हमारा यहाँ पुनः आना और जाना ज़रूरी हो जाता है और उन पाठों को पुनः सीखना होता है जो हमारे लिए ज़रूरी हैं। अपने विकास के पथ पर हमने जो ग़लतियाँ की हैं, उन्हें हमें सुधारना होता है।

इस जीवन में हमारे सामने एक ऐसी स्थिति आती है जब हमारा आगे का सीखना रुक जाता है। हम मानो संतृप्त हो जाते हैं। फिर आत्मा अपने असीम विवेक के साथ निर्णय करती है: "बहुत हुआ, अब मुझे बदलना होगा।" वह इस शरीर को छोड़ देती है और अगर इसे सीखने के लिए पुनः आना है तो यह दूसरा वातावरण, दूसरा शरीर और वह सब चीज़ें अपने विकास के लिए चुनती है, जिसकी उसे आवश्यकता होती है। तो यह हमारी

ख़ुद की पसन्द है। हम ख़ुद चुनते हैं कि हमें कितना लम्बा जीवन चाहिये, कहाँ जन्म लेना है, किसके यहाँ जन्म लेना है आदि। आत्मा ही हर चीज़ चुनती है।

लेकिन होता क्या है? हमारे जन्म लेते ही यह ज़ालिम दुनिया हमें जकड़ लेती है। फिर से इच्छायें बढ़ने लगती हैं, लालच बढ़ने लगता है, जिस योजना को बनाकर हम जन्म लेते हैं, उसे हम भूल जाते हैं, और ग़लत रास्ते पर जाने लगते हैं। मतलब यह कि जीवन का पाठ हम सीख नहीं पाते। हमारा जीवन बेकार हो जाता है। इस अर्थ में, हमारा मरना भी बेकार हो जाता है क्योंकि हम फिर से जीने के लिए ही मरे थे। हम अपने विकास के लिए, अपने आपको एक नया मौक़ा देने के लिए मरे थे। लेकिन उस अवसर को हम अपने मूर्खतापूर्ण व्यवहार से स्वयं नष्ट कर देते हैं।

अगर हम मृत्यु के अर्थ को सही ढंग से समझें, तो हम स्वयं कहेंगे कि 'हमने अपना जीवन व्यर्थ गँवाया, हमें अपनी मृत्यु को व्यर्थ नहीं करना चाहिए।' यही हमारा अन्तिम विचार होना चाहिए। क्योंकि अगर हम जानते हैं कि हम क्या कर रहे हैं, तो हम जिसे जीवन में अर्जित नहीं कर सके, उसे मृत्यु में अर्जित कर सकते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि मृत्यु के क्षण हमें इस बात का बोध हो कि हमारा ध्येय क्या है।

ध्यान, सतत स्मरण, मालिक के प्रति प्रेम का विकास आदि हम इसीलिए करते हैं, ताकि शरीर त्यागते समय भी हमारे मन में अच्छे विचार ही प्रभावी रहें। अगर हमने इसे अपने अस्तित्व का निरन्तर सत्य बना लिया तो निश्चय ही हमारी मृत्यु के क्षण भी यह हमसे अलग नहीं हो सकेगा। हमें इसी विचार और अवस्था में मरने की कोशिश करनी चाहिए।

और तब हमारे पुनर्जन्म का और मुक्ति न होने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होगा। हिन्दुत्व कहता है कि यदि आप यह न कर सके तो अपने जीवन के अन्तिम क्षण में

रूपरहित, गुणरहित, नामरहित ईश्वर का स्मरण कीजिए - इससे भी यह सम्भव हो जायेगा।

तो मृत्यु का अस्तित्व ही नहीं है। अगर मैं अपनी कमीज़ उतारकर धुलाई के लिए देता हूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि कमीज़ ख़त्म हो गई। न ही इसका मतलब है कि मैं मर गया। दोनों हैं, लेकिन साथ नहीं हैं। कमीज़ कहीं है, मैं कहीं और। इसमें चिन्ता की बात क्या है? इसमें डरने की क्या ज़रूरत है?

जब तक हम मृत्यु से भयभीत रहेंगे, हमारी मुक्ति नहीं हो सकेगी और हम जन्म-मरण के इस चक्र से मुक्त नहीं हो पायेंगे। इसका मतलब यह है कि जो मृत्यु से डरता है उसे तब तक बार-बार मरते रहना है जब तक कि वह भय उससे दूर न हो जाये।

हर ध्यान मृत्यु का प्रशिक्षण है। जब भी ध्यान में हम अपने अन्दर गहराई में उतरते हैं और ध्यान की समाप्ति पर उससे बाहर आते हैं, हम कहते हैं, मैं पूरी तरह विलीन हो गया था। मुझे पता ही नहीं चला कि मैं कहाँ था। मुझे यह भी मालूम नहीं था कि मैं ध्यान कर रहा था या सो रहा था। वाक़ई ध्यान की गहराई में हम वहाँ नहीं होते। इस अर्थ में देखा जाये तो उतने समय के लिये हम इस अस्तित्व के लिये मृत हो जाते हैं। इस तरह ध्यान मृत्यु का प्रशिक्षण है और अगर हमने इसे ठीक से किया तो हम मृत्यु के मालिक बन जाते हैं, मरने की इस क्रिया पर हमारा पूरा अधिकार हो जाता है। हम जब चाहें तब मर सकते हैं, और जब चाहें तब इससे बार-बार बाहर आ सकते हैं, जिससे कि अब उसकी मृत्यु वास्तव में मृत्यु नहीं रह जाती।

उपनिषद में कहा गया है, "जो कभी नहीं था, वह कभी होगा भी नहीं। जो आज है, वही कल भी था और वही आगे भी रहेगा।" आत्मा शाश्वत है; वह दिव्य, अनन्त, शाश्वत, सर्वोच्च ईश्वर का सार है।

ईश्वर का न जन्म होता है, न ही वह मरता है। अतः मैं न पैदा हुआ हूँ, न मैं मर सकता हूँ। जन्म और मृत्यु की समस्या हमारी ख़ुद की बनाई हुई समस्या है जिसे लोगों को जन्म लेते और मरते देखकर हमने अपने ऊपर लाद लिया है। इसीलिए मैं समझता हूँ कि मेरा भी जन्म हुआ है और मैं भी मरनेवाला हूँ। सत्य यह है कि मेरा शरीर अस्तित्व में आया है और यह समाप्त भी होगा। लेकिन मैं शाश्वत हूँ।

❀❀❀
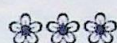
## मृत्यु पर विजय

मृत्यु पर विजय पाने का एकमात्र उपाय है

कि हम स्वयं को

मालिक के चरणों में अर्पित कर दें

और कहें,

"गुरुदेव, मुझे स्वीकार कर लो।

इससे पहले कि मृत्यु मुझे ले जाए,

तुम मुझे अपना लो।"

- चारीजी

# सफ़ाई

'योग' का अर्थ है 'जोड़ना'। दो चीज़ें जब तक एक दूसरे से जुड़ने के योग्य नहीं होतीं वे जोड़ी नहीं जा सकतीं। यदि एक अपूर्ण है तो पूर्ण से जोड़ने के पहले उसे पूर्ण बनाने की दृष्टि से सुधारना और पुनर्गठित करना होगा। इस प्रकार योग, जोड़ने के अर्थ में, आध्यात्मिक अभ्यास का चरम बिन्दु है, केवल एक अभ्यास मात्र नहीं है, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। अपूर्ण को पूर्णता प्राप्त करनी होगी, तभी जुड़ना सम्भव है। सहज मार्ग के अन्तर्गत इसे सफ़ाई की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

**सफ़ाई की आवश्यकता क्या है?** हम आज बाहर के प्रदूषण, अर्थात् नष्ट होती ओज़ोन की परत (*लेयर*), ख़त्म होते यूरोप के जंगल, नदियों में मछलियाँ भी जीवित न रह सकें इतना प्रदूषित जल, इत्यादि के बारे में तो अत्यधिक चिन्तित हैं। परन्तु अरबों सालों से अस्तित्व में रहने वाले, अपने मूल स्थान से जिस क्षण हम अलग हुए, यानी अपने अहंकार के कारण बाहर फेंक दिये गये, उसी क्षण से हम अपनी इस आन्तरिक दुनिया को भी प्रदूषित करते आ रहे हैं। हमने कभी इसकी सफ़ाई की? क्या हमने कभी सोचा है कि जब हम अपने अन्तःकरण को साफ़ करेंगे, तो बाह्य स्वतः ही साफ़ हो जायेगा? क्या यह हमारा आन्तरिक लालच, हमारी आन्तरिक वासना नहीं है, जो हमारी इस बाहर की दुनिया को प्रदूषित कर रही है? क्या बाहर की दुनिया हमारे अन्दर की दुनिया का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है? तो क्या हमारे अपने अन्दर की दुनिया की सफाई में ही हमारी इस बाहर की दुनिया के साफ होने की सम्भावना छिपी हुई नहीं है? अगर हम ऐसा नहीं करते तो मानो हम केवल घास काट रहे हैं या पौधों की कलमें ठीक कर रहे हैं। जब यह बात समझ में आजाये तो कौन ध्यान नहीं करेगा? कौन अपनी सफ़ाई करना नहीं चाहेगा?

हमें लगता है कि जीवन ने अपना वह अर्थ खो दिया है जो इसका होना चाहिये था। हमारी सफलतायें बस खोखला ढाँचा है। हमारी सम्पदा बस एक धोखा और विडम्बना मात्र है, जिसमें उन चीज़ों को देने की क्षमता नहीं है, जिनकी हमें उत्कट इच्छा है, जैसे शान्ति, ख़ुशी और सन्तुष्टि। ऐसा लगता है कि हम अभी भी मानव देह में पशु हैं, जो लोभ, काम और क्रोध से इस हद तक ग्रस्त हैं कि इन इच्छाओं की पूर्ति में कोई आड़े आए तो हममें से बहुत कम ऐसे होंगे जो उसे नष्ट करने से हिचकिचायेंगे। यदि ऐसी वृत्तियों को बने रहने दिया जाए और पनपने दिया जाए तो निश्चित रूप से जिसने मनुष्य का जन्म लिया था वह पशु की तरह ही मरेगा।

मनुष्य के इस पशुत्व का मानवीकरण करना आध्यात्मिक अभ्यास का प्रथम चरण है। जैसा कि मेरे गुरुदेव कहते हैं, "यह सोचने के पहले कि उसे पूर्ण मानव बनना है, पशु-मानव को मनुष्य-मानव बनना है," यह करने के लिए व्यक्ति की वृत्तियों में सुधार करना और उन्हें उचित दिशा देना ज़रूरी है। मन और स्मृति पर अंकित अतीत के संस्कारों को मिटाना है। ये संस्कार ही वर्तमान विचार और कर्मों के स्रोत होते हैं। इसलिए स्वाभाविक है, जब तक ये बने रहेंगे, कुछ निश्चित तरीक़ों से ही कार्य होगा। इसलिए मानव तन्त्र की सफ़ाई सर्वोच्च महत्व की है।

**संस्कार कैसे बनते हैं?** हम जब भी किसी चीज़ के बारे में सोचते हैं, और उससे लगाव पैदा कर लेते हैं, तो मन में एक संस्कार बन जाता है। विचार से जो संस्कार बना वह किसी कार्य अथवा क्रिया का मूल बन जाता है। और जब उस कार्य में आसक्त हो जाते हैं, तब वह संस्कार और गहरा हो जाता है। और जैसे-जैसे ये संस्कार गहरे होते जाते हैं, हम बार-बार जनम मरण के चक्र में फँस जाते हैं। शायद इसी तरीक़े से आदतें बनती हैं। जैसे-जैसे ये संस्कार गहरे होते जाते हैं, ये ठोस भी होते जाते हैं। उस स्थिति में हम सही अर्थ में स्वयं को अपने अतीत का क़ैदी या बंदी पाते हैं।

दरअसल हमारे पिछले संस्कार ही हमें यहाँ जकड़े रखते हैं और हमारे बर्ताव को इस क़दर मोड़ देते हैं कि हम उसे बदल नहीं सकते। हम अपने अतीत के ग़ुलाम हैं। हम समझते हैं कि हम जैसे चाहें वैसे सोचें या करें, ऐसा करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं। लेकिन यह ग़लतफ़हमी है। हर बात में हम अपने को अतीत से बँधा पाते हैं। अब ऐसी परिस्थिति में किसी को कैसे बदला जाये? यह लालाजी साहब की महानता है कि इस सफ़ाई के तरीक़े से पिछले संस्कार बिलकुल निकाले जा सकते हैं, लेकिन धीरे-धीरे! देखिए, यह कितना बड़ा वरदान है। किसी शख़्स से यह कहने से क्या फ़ायदा कि बदल जाओ? हाँ, हर शख़्स बदलना ज़रूर चाहेगा। लेकिन यह नामुमकिन है। क्यों? इसलिए कि मन अतीत से बँधा पड़ा है। अब आप देख सकते हैं कि मन में जमे पिछले संस्कारों की सफ़ाई द्वारा ही इस परिवर्तन की गुँजाइश है। और इससे यह भी सम्भव है कि अभ्यासी धीरे-धीरे अपने ही अतीत से मुक्त हो जाए।

सफ़ाई कैसे की जाती है? सायंकाल जब दैनिक जीवन का कार्य पूरा हो जाता है, हम रोज़ आधे घंटे के लिए, सुबह की भाँति आसन पर, आँखें बन्द करके सफ़ाई के लिए बैठें और यह कल्पना करें कि दिन भर की इकट्ठी सभी छापें, जटिलतायें, स्थूलतायें आदि पिघल कर पीछे से भाप या धुएँ के रूप में बाहर निकल रही हैं और निकल गयीं तथा उसकी जगह गुरुदेव के हृदय से दिव्यता हमारे हृदय में प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार दिन भर के विचारों और कार्यों का प्रभाव मिट जाता है। इस तकनीक का सतर्कता से किया गया अभ्यास यह सुनिश्चित करता है कि अभ्यासी पूर्व संस्कारों में और संस्कार नहीं जोड़ रहा है। पूर्व संस्कार तो गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक शक्ति से सदा साफ़ करते ही रहते हैं। इस प्रकार नये संस्कारों के एकत्रित होने से बचे रह कर, हम प्रगति कर पाते हैं।

एक बोतल जिसमें तेल रखा जाता था, उसे दूध की बोतल बनाने के लिए सरलता से साफ़ किया जा सकता है, किन्तु एक खरोंचे हुए ग्रामोफोन रिकार्ड को कैसे साफ़ किया जा सकता है? हम उसे कितना भी क्यों न साफ़ करें,

साबुन के घोल से धोयें, लेकिन उससे निकलने वाली आवाज़ तो कर्ण-कटु ही रहेगी। हमारा जीवन भी तो ऐसी ही गहरी खरोंचों से भरा हुआ है - खरोंचें, जो निराशाओं की हैं, और गहरी खरोंचें असफलताओं, शर्म और आपदाओं की हैं, सबसे गहरी खरोंचें पतन और भ्रष्ट आचरण की हैं। फिर इसमें आश्चर्य की ऐसी कौन सी बात है, यदि व्यक्ति के भाग्य की सुई उन्हीं पुरानी खरोंचों में चलती रहे और उन्हीं निराशाओं, असफलताओं, आपदाओं और पतन की कहानी दोहराती जाये। इस हालत में सफ़ाई गहराई तक करनी होगी। यहाँ तन्त्र को फिर से ढालने की ज़रूरत है ताकि एक ऐसा नया रिकार्ड बनाया जा सके जिससे वह उदात्त संगीत सुना जा सके जिसे बनानेवाले ने शुरू - शुरू में उसके बेदाग़ तल पर छापा था।

**सफ़ाई कब करनी चाहिए?** जब आपके दिन भर का काम पूरा हो जाए, तब सफ़ाई करनी चाहिए। पुरुषों के लिए इसका अर्थ है, जब वे काम से वापस लौटते हैं। आकर हाथ मुँह आदि धोकर सफ़ाई करनी चाहिए और स्त्रियों के लिए यदि वे भोजन बनाती हैं तो भोजन बनाने के बाद, या अगर वे काम पर जाने वाली हैं तो काम से लौटने के बाद, उन्हें भी उसी प्रकार सफ़ाई करनी चाहिए जैसे पुरुष करते हैं।

सुबह ध्यान का अभ्यास करने से पहले भी सफ़ाई की क्रिया लगभग पाँच मिनट के लिये कर सकते है।

यदि आप शाम को सफ़ाई नहीं कर पाते, क्योंकि आप रात को नौ बजे घर लौटे हैं और बहुत थक गये हैं, तो सफ़ाई और रात्रि का प्रार्थना-ध्यान, दोनों को सोने से पहले कर लें। परन्तु ऐसी छूट एक-दो बार के लिये ही होनी चाहिए, जब आप सचमुच थके हुए हैं। परन्तु लोग अकसर लगातार पूरे साल ऐसे ही करने की आदत बना लेते हैं क्योंकि ऐसा करना सुविधाजनक लगता है। मैंने कभी नहीं देखा कि एक सच्चे अभ्यासी को निश्चित समय पर ध्यान अथवा सफ़ाई करने में कोई समस्या आती हो। अतः इसका अर्थ केवल यही है कि ये समस्याएँ केवल तभी तक रहती

हैं, जब तक अपनी आध्यात्मिक उन्नति में हमारी दिलचस्पी नहीं बढ़ती।

**हमें सफ़ाई में क्या करना चाहिए?** मैं देखता हूँ कि बहुत से लोग सफ़ाई की जगह ध्यान करने लगते हैं। यहाँ मैं उस बात पर ज़ोर देना चाहूँगा जिसे बहुत लोग समझते नहीं हैं कि **सफ़ाई की क्रिया में हमें अपनी इच्छाशक्ति लगानी पड़ती है।** ध्यान में हम इच्छाशक्ति का प्रयास नहीं करते। ध्यान की प्रक्रिया में जिस विषय पर हम ध्यान कर रहे हैं, उसी पर लगातार सतर्क रहने की बात है। शायद इसीलिए अधिकतर लोग सफ़ाई करने की जगह ध्यान करने लगते हैं, क्योंकि यदि इच्छाशक्ति न लगाई जाये तो यह सिर्फ़ ढोंग जैसा बन जाता है। लेकिन क्योंकि हम उसी स्थान पर, उसी मुद्रा में, उसी भाव से बैठते हैं जिसमें हम सामान्यतया ध्यान के लिए बैठते हैं, तो मन ध्यान करने का आदि होने से ध्यान में खिसक जाता है। इसीलिए मेरे मालिक, बाबूजी महाराज इस बात पर हमेशा बल देते थे कि जब हम सफ़ाई के लिए बैठें तो हमें अपनी इच्छाशक्ति लगानी चाहिए और वे इशारे से इस प्रकार बताते भी थे, मानो आप अपना हाथ अपने दिल में डालकर, इस प्रकार वस्तुओं को पीछे की ओर से बाहर फेंक रहे हैं। सफ़ाई करने का यही सही तरीक़ा है।

**क्या सफ़ाई के समय, हमें दिन-भर के हर काम को याद करके उसकी छाप (प्रभाव) को साफ करने की कोशिश करनी चाहिए?** नहीं। जब हम स्नान करते हैं तो क्या हम उन तमाम गंदी चीज़ों को, जिन्हें हमने छुआ है, याद करते हैं और फिर उन्हें साफ करने की कोशिश करते हैं? देखिये, यह तो एक सामान्य ढँग है।

**इस सफ़ाई की ज़रूरत कब तक रहती है?** वे हँसे और बोले, "यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है। अगर सहयोग पूरी तरह से हो तब तो काम आसान है। अगर हम सफाई करते जाएँ और अभ्यासी स्थूलता बढ़ाते जाएँ तो हम क्या कर सकते हैं?" अब देखिए, अभ्यासी का सहयोग बहुत ज़रूरी है। उसे अपनी ज़िन्दगी को इस तरह मोड़ लेना

चाहिए कि उसे उसकी प्रगति में सहायता मिले। पिछला जो कुछ इकट्ठा पड़ा है, उसे निकालना गुरु का फ़र्ज़ है। लेकिन साहब, अभ्यासी को भी तो सावधान रहना चाहिए कि विचारों या काम से स्थूलता इकट्ठी न करते जाएँ। यह सावधानी बहुत ज़रूरी है। और ख़ुद की सफ़ाई की क्रिया अगर ठीक से की जाए तो लालाजी साहब की कृपा से हम एक ऐसी स्थिति पर पहुँच सकते है कि नई छापें नहीं पड़ती और नए संस्कारों का बनना बन्द हो जाता है। जब संस्कार बनना बन्द हो जाता है तो लक्ष्य हमारी नज़र में रहने लगता है। हो सकता है कि संचित संस्कारों में से कुछ बचे हों, पर वह मालिक की ज़िम्मेदारी है। लेकिन जब तक हम इस शरीर में रहते हैं तब तक कुछ न कुछ स्थूलता तो रहेगी।

**सफ़ाई में मालिक की भूमिका क्या है?** जब हम योग की सहज मार्ग पद्धति का अभ्यास करना शुरू करते हैं तो पहली बात, जिसे गुरुदेव हमारे मन में बैठाते हैं, और जो अधिक महत्वपूर्ण भी है, यह है कि अतीत के ये संस्कार हमारे मन से हटाने होंगे। यह स्वाभाविक है कि यदि हम जानते कि इन्हें कैसे हटाया जाये तो हम खुद ही इन्हें हटा चुके होते। किन्तु जहाँ हमें संस्कारों के बनाने में पूरी स्वतन्त्रता है और यह हमारे बस में है। वहीं जब उन्हें हटाने की बात आती है तब हम अपने को असहाय पाते है। ठीक यही कारण है कि हमें अपनी मदद के लिए एक बाहरी शक्ति से अथवा एक बाह्य स्रोत से सहायता की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति हमारे लिए यह काम कर सकता है उसे हम सद्‌गुरु या मालिक कहते हैं। इस प्रकार पहली चीज़ है ऐसे सद्‌गुरु की खोज जो हमारे लिए यह काम कर सके। बिना सद्‌गुरु के, कोई योग सम्भव नहीं है। इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि बिना गुरु के योग हो ही नहीं सकता।

सहज मार्ग इस प्रकार सफ़ाई पर सबसे अधिक बल देता है। वह सभी संस्कार जो हमारे भीतर हैं और जो हमारे पिछले विचारों और कर्मों द्वारा उत्पन्न हुए हैं, उन्हें पूरी तरह साफ़ कर बाहर निकाल देना होगा। सद्‌गुरु हमारे

इन जमे हुए संस्कारों से हमें मुक्ति दिलाने के लिए अपनी आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग करते हैं, और तब मानो हम नया जन्म लेते हैं। हम आध्यात्मिक रूप से पुनः जन्म लेते हैं। शरीर की ऊपरी सफ़ाई से काम नहीं चलेगा। अतीत के बोझ को उतार फेंकने के लिए गहरी सफ़ाई आवश्यक है। ये पिछले बोझ, सिवाय छापों के और कुछ नहीं हैं, जिन्हें हमने अपने ग़लत विचारों और कामों के द्वारा अपने ऊपर अंकित कर लिया है। ऐसी सफ़ाई सही मायने में अतीत से मुक्ति है।

अब हम ऐसे वर्तमान में प्रवेश करते हैं जो अतीत से प्रभावित नहीं है। अभी तक हमारा वर्तमान और कुछ नहीं, बस अतीत में स्थापित वृत्तियों और प्रवृत्तियों के न बदलने का परिणाम निरूपित करता था। और भविष्य भी और कुछ नहीं बल्कि वर्तमान के आगे उन्हीं प्रवृत्तियों के प्रवाह का प्रसारण होगा। इस प्रकार हम अतीत का प्रभाव भविष्य पर देखते हैं। जब आध्यात्मिक प्रतिभा से सम्पन्न सद्गुरु द्वारा कारगर सफ़ाई कर दी जाये तो हम एक निरपेक्ष वर्तमान में प्रवेश करते हैं, एक ऐसा वर्तमान जिसका सही उपयोग भविष्य के पूर्व-निर्धारित ध्येय की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है। और यह लक्ष्य पूर्णता का लक्ष्य है।

यहाँ अभ्यासी का कर्तव्य क्या है? हमें पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि अपने जीवन को इस प्रकार संचालित करना कितना महत्वपूर्ण है कि हमारे विचार और कर्म अब आगे और कोई संस्कार न बनाने पायें। यह तभी हो सकता है जब हम एक ऐसा भाव बना लें जिसे मेरे गुरुदेव 'अनासक्त आसक्ति' कहते हैं। वे निरासक्ति का उपदेश नहीं देते। वे यह शिक्षा देते हैं कि हम सम्बद्ध तो रहें पर मनोभाव अनासक्ति का रहे। मनुष्य होने के नाते हमारे कर्तव्य और दायित्व हैं। हमें उनकी अवहेलना करना या उन्हें छोड़ना नहीं है जबकि ऐसा करना संन्यास-मार्ग में सरल होता है। गुरुदेव कहते हैं कि हमें अपनी उन्नति के प्रयत्न करते हुए उन कर्तव्यों और दायित्वों को भी पूरा करना है जो हमने स्वीकार किए हैं। जब यह बोध उत्पन्न हो जाता है, तब कर्तव्य भाव सर्वोपरि हो जाता है।

तब हम व्यक्तिगत सन्तोष, व्यक्तिगत आनन्द या व्यक्तिगत सफलता के लिए काम नहीं करते। हम काम करते हैं, क्योंकि हमें अपने कर्तव्य निभाने हैं, उन सबके प्रति अपने दायित्व निभाने हैं जिन्हें हम चाहते हैं, प्यार करते हैं जैसे हमारे परिवारजन, मित्र, अधिकारी आदि। क्योंकि अब हमारा कार्य इच्छाओं से प्रेरित नहीं होता, केवल कर्तव्य और समर्पण के भाव से ही किया जाता है, इसलिए संस्कार भी नहीं बनते। अतीत से हम पहले ही मुक्त हो चुके हैं। यह ऐसे है कि जैसे हमारा अतीत (पूर्व संस्कार) कभी था ही नहीं। हम ऐसे वर्तमान में प्रवेश करते हैं जहाँ हमारे विचार और कर्म ऐसे कोई संस्कार नहीं बनाते जो हमारे भविष्य को प्रभावित कर सकें। अतीत के बोझ से मुक्त वर्तमान, शाश्वत है। हम जीवन के ऐसे आयाम में प्रवेश करते हैं जिसे प्राचीन भारतीय महर्षियों ने 'शाश्वत वर्तमान' कहा है। ध्येय के साक्षात्कार की ओर बढ़ने की असली शुरूआत अब यहाँ से होती है।

सफ़ाई करने से लोग क्यों डरते हैं? सहज मार्ग में सफ़ाई बहुत महत्वपूर्ण है। मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि बिना सफ़ाई किये आप कहीं नहीं पहुँच सकते। लेकिन मैं देखता हूँ कि विभिन्न कारणों से लोग सफ़ाई करने से डरते हैं। हो सकता है, सफ़ाई के समय अपने अतीत के कर्मों, अपने कार्यों, अपने विचारों और छापों के बनाने के अनुभवों का सामना करना पड़ता है। कुछ अच्छे हो सकते हैं, कुछ बहुत ख़राब। प्रत्येक स्वप्न या दुःस्वप्न, वे वस्तुएँ हैं जो हमारे अन्दर से मुक्त की जा रही हैं। अगर कोई व्यक्ति इस डर से शौचालय नहीं जाता कि जो कुछ भी उसके अन्दर से बाहर निकल रहा है वह उसको या उसकी गन्ध को पसन्द नहीं करता और इसीलिये वह शौचालय जाने से बचने की कोशिश करता है तो वह मर जायेगा। है कि नहीं?

इसलिये वे लोग, जो संस्कारों को इस डर से दिल में छिपाये रखते हैं कि उन्हें लज्जा आती है या ग्लानि होती है या उन्हें डर है कि जब संस्कार बाहर निकलेंगे तो वही दृश्य फिर से दिखायी देंगे, वे उन लोगों की भाँति हैं, जो

शौचालय नहीं जाते। वे मर जायेंगे। यही उन लोगों के साथ होता है, जो आध्यात्मिक रूप से सफ़ाई नहीं करते। उनका कोई आध्यात्मिक भविष्य नहीं है। तो सही आध्यात्मिक मायने में वे पुनः वापस आने के लिए मरते हैं।

इसीलिए आध्यात्मिकता में हम कहते हैं कि मृत्यु का भय हमें तभी तक है जब तक हमारे अन्दर भय और मोह हैं। मृत्यु से परे जाने का निर्णय हम इसी डर से नहीं कर पाते। इसे हमें सावधानीपूर्वक समझ लेना चाहिये कि अगर हम संस्कारों की सफ़ाई में सफल होकर, ध्यान के द्वारा अपने अन्दर शाश्वत रूप से विद्यामान प्रकाशमय दिव्य उपस्थिति का अधिकाधिक विकास कर लेते हैं तो हमारे लिए मृत्यु का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा और हम शरीर को उसी प्रकार छोड़ देंगे जैसे हम घर पहुँचने पर टैक्सी, रेल या वायुयान को पीछे छोड़ देते हैं।

**जब तन्त्र की सफ़ाई होती है, तब क्या होता है?** सफ़ाई की प्रक्रिया का सम्बन्ध अतीत की छापों से है, जो हमारे अन्दर संस्कारों के रूप में दबे पड़े हैं। एक अर्थ में ये संस्कार ही हैं जो बोझ बनकर हमें इस अस्तित्व से बाँधे रहते हैं या कहिए, गुरुत्वाकर्षण (*ग्रेविटी*) जैसा काम करते हैं। जब मालिक हमारी सफ़ाई करते हैं, हमारे तन्त्र के अन्दर जिसे वे रिक्तता कहते हैं, आ जाती है ताकि ख़ाली जगह में कुछ नयी चीज़ भरी जा सके। जब आप अपने अन्दर से कुछ ख़ाली करते हैं, तो अंतःकरण की उस ख़ाली जगह में वे अपनी प्राणाहुति भर देते हैं।

संस्कार हटते ही वहाँ शाश्वत रूप से विद्यमान दिव्य प्रकाश, दिव्य उपस्थिति प्रकट हो जाती है। हमें ईश्वर को कहीं से लाकर, उसे अपने अन्दर स्थापित नहीं करना होता। यह तो कूड़ा करकट निकाल कर वहाँ नयी सजावट करने की तरह है। यह कूड़ा करकट ही हममें से प्रत्येक के अन्दर की शैतानियत, कलुषता या निम्न प्रवृत्तियाँ हैं।

हम किस वस्तु से डरते हैं, यह बात हमारे संचित संस्कारों पर निर्भर करती है। इसलिए जब आपकी सफ़ाई पूरी हो जाती है तो आपको कोई डर नहीं रह सकता।

इसलिए सन्त निडर होते हैं। आप जानते हैं वे जंगलों में विचरण करते हैं जहाँ हाथी आता है, शेर घूमता है, बाघ उनके सामने से निकल जाता है, पर उन्हें कोई डर नहीं लगता। वे कैसे डर सकते है? वहाँ कोई संस्कार ही नहीं है। मैं जिस चीज़ पर ललचाता हूँ उस पर आप नहीं ललचाते। लालच बाहर से नहीं होता, यह तो अंदर से है। **इसीलिए जब सफ़ाई सम्पूर्ण हो जाए तो लालच, डर आदि सभी बातें समाप्त हो जानी चाहिए।**

जिस भौतिक अस्तित्व के साथ मैं पैदा हुआ हूँ, वह मृत्युपर्यन्त मेरा साथ छोड़ने वाला नहीं है। फिर सफ़ाई का क्या अभिप्राय है? जब आप कोई क्रिस्टल ग्लास ख़रीदकर उसे साफ़ करते हैं तो उसका आकार नहीं बदल जाता परन्तु अब वह स्वच्छ होकर कुछ चीज़ों को रखने के लिए उपयुक्त पात्र ज़रूर बन जाता है। इसीलिए जो अपात्र था, उसे सफ़ाई द्वारा ईश्वरीय कृपा का सुपात्र बना दिया जाता है। सफ़ाई का सही अभिप्राय यही है। इसलिए ऐसा नहीं है कि निर्धन धनवान बन जाएगा, बदसूरत लड़की सुंदरी बन जाएगी या कमज़ोर व्यक्ति बलवान बन जाएगा। हालाँकि मैं कह सकता हूँ कि सभी क्रिया-कलापों में एक समभाव आ जाएगा।

सफ़ाई की प्रक्रिया को बहुत बारीक़ी से समझना चाहिए। सफ़ाई भौतिक अस्तित्व को इस रूप में प्रभावित नहीं करती कि इसमें न तो मेरे शरीर में परिवर्तन आएगा, न मेरी आँखों के रंग में परिवर्तन आएगा, न मेरे बालों के रंग में परिवर्तन आएगा। परन्तु मेरे जीवन की गुणवत्ता बदल जाएगी। जब यह परिवर्तन होता है तो बीमारियाँ दूर हो सकती है क्योंकि बीमारी वास्तव में कोई भौतिक वस्तु नहीं है। बुद्धि भी कुछ जाग्रत हो सकती है, कम से कम मानवीय स्तर को सामान्य बनाने की स्थिति तक क्योंकि बुद्धिमत्ता की भी सीमा है।

अगर आप इस विषय पर विचार करें तो पायेंगे कि गुरुत्वाकर्षण (*ग्रेविटी*) ही हमें नीचे बनाए रखता है। अगर यह दूर हो जाए तो पहाड़ भी उड़ने लगें। इसमें कोई

आश्चर्य की बात नहीं है। मैं विश्वास के साथ यह कह रहा हूँ कि सहज मार्ग में जो सफ़ाई की पद्धति है यह आध्यात्मिक विकास में हमारी बहुत मदद करती है। इसकी वजह से हम अपनी अपूर्णताओं, न्यूनताओं और संस्कारों के बोझ से एक ही झटके में नब्बे प्रतिशत तक छुटकारा पा जाते हैं।

निःसंदेह जब हम सफ़ाई करते हैं और संस्कारों को हटाते हैं तो हमारे व्यक्तित्वों की भिन्नता का धीरे-धीरे ख़ातमा होता है, जिसे चरित्र में परिवर्तन कहा जा सकता है। आक्रामकता चली जाती है। लालच चला जाता है, वासना चली जाती है। एक-एक करके सारे संस्कार चले जाते हैं और हमारा व्यक्तित्व बदल जाता है। यह प्याज़ को छीलने के जैसा है। आप तह के बाद तह हटाते जाते हैं। आप कह सकते हैं कि यह व्यक्तित्व का छिलका हटाने जैसा है। जब हम स्वयं में से सब कुछ निकाल देते हैं, तब हमारे अन्दर की असलियत प्रकट होती है।

विभिन्न धार्मिक विधि-विधानों में और आध्यात्मिक सफ़ाई में क्या अन्तर है? वस्तुतः यह सहज मार्ग की अनोखी विशेषता है। हालाँकि सफ़ाई का यह विचार धार्मिक पद्धतियों में भी यत्र-तत्र दिखायी देता है लेकिन यह वहाँ शारीरिक और किसी हद तक मानसिक सफ़ाई तक ही सीमित है। मेरी जानकारी में धर्मों में इससे ज़्यादा और कुछ नहीं मिलता। इसीलिये मंदिरों और गिरजाघरों के विधि-विधान केवल विधि-विधान बनकर ही रह गये। जब भी हम वहाँ जाते हैं हमें उस प्रसन्नता, उस उल्लास और उस हल्केपन की अनुभूति नहीं होती जैसी किसी अभ्यासी को सफ़ाई के बाद होती है। मेरा मानना है कि आप सब लोगों ने इसका अनुभव यहाँ किया होगा।

इसीलिये हम पाते हैं कि धार्मिक विधि-विधानों और गुरुदेव द्वारा बतायी गयी सफ़ाई की इस प्रक्रिया में भारी अन्तर है। बाबूजी कहते भी थे कि *लाइट* का मतलब प्रकाश देखने से नहीं बल्कि हल्केपन की अनुभूति करने से है। संस्कारों का बोझ कम हो जाने से निश्चित रूप से हमें

हल्केपन की अनुभूति होती है। इसीलिये मैं फिर से अपनी इस बात को दोहरा रहा हूँ कि हमें अपने आध्यात्मिक विकास का नब्बे प्रतिशत इस सफ़ाई की प्रक्रिया से ही मिलता है।

पहले सफ़ाई कीजिए, प्राणाहुति अपने आप आती है। बाबूजी ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि पुरानी प्रवृत्तियों के सक्रिय रहते हुये अगर हम प्राणाहुति प्राप्त करेंगे तो इससे हमारी ये प्रवृत्तियाँ और मजबूत होंगी। वे अकसर कहते थे अगर एक चोर को प्राणाहुति दी जाये तो वह एक पक्का चोर बन जायेगा। मेरा भी हमेशा का यही अनुभव है कि सफ़ाई के बिना प्राणाहुति अधिक कारगर नहीं होती। हम वह सब कुछ नहीं पाते जो हमें पा लेना चाहिये। इसीलिये मैं कहता हूँ कि **सफ़ाई, साधना की आधारभूत आवश्यकता है।** मैं अभ्यासियों को सलाह देता हूँ कि अगर कभी उनसे ध्यान छूट भी जाये तो भी वे ख़याल रखें कि शाम की सफ़ाई किसी भी हालत में छूटने न पाये। इससे हमारा पात्र पवित्र बना रहता है और हम प्राणाहुति को ठीक प्रकार से प्राप्त कर पाते हैं। इसीलिये मैं एक बार फिर कह रहा हूँ कि सफ़ाई की इस प्रक्रिया की किसी भी स्थिति में उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।

यदि हमने किसी बोतल में पेट्रोल रखा है और अब उसमें दूध लेना चाहते हैं, तो पहले हमें उसे साफ़ करना होगा। जब हम उच्चतर स्तर की वस्तु को, उसके दिव्य अस्तित्व को, मालिक की प्राणाहुति द्वारा स्वयं में भरना चाहते हैं, तो हमें स्वयं को उसे प्राप्त करने लायक़ बनाना पड़ेगा। यही सफ़ाई की क्रिया है।

वास्तव में सफ़ाई के बिना प्राणाहुति, आदमी का नुक़सान करती है। इसलिए पर्याप्त सफ़ाई के बाद ही प्राणाहुति देनी चाहिए। इसीलिए इस पद्धति में प्रवेश कराते समय हम तीन सिटिंग देते हैं (कभी-कभी यह अधिक भी हो सकती हैं) जो पूरी तरह से सफ़ाई के लिए होती हैं। कोई प्राणाहुति नहीं। सिटिंग के दौरान आप जो हल्कापन

महसूस करते हैं, वह सफ़ाई के कारण है, प्राणाहुति के कारण नहीं।

जब आप किसी की सफ़ाई करते हैं, क्या आप उनमें परिवर्तन लाते हैं? आपने एक महान ख़लीफ़ा की एक सुन्दर कहानी सुनी होगी। उन्होंने एक कला-प्रतियोगिता का आयोजन किया और घोषणा की कि सबसे सुन्दर कलाकृति के लिए पुरस्कार दिया जाएगा। सैकड़ों कृतियाँ आईं। चीन का एक दल आया। उसकी कलाकृति से सब आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि वे लोग महान चित्रकार थे। अन्त में एक ईरानी दल आया। दोनों को एक ही कमरा मिला, जिसे परदे से विभाजित किया गया था। चीनी दल ने बढ़िया से बढ़िया रंग मँगाये; सोने के रंग, चाँदी के रंग। तीस दिन का समय दिया गया। वे चौबीसों घंटे काम करते थे। और सामग्री मँगाते थे। पॉलिश, रत्न, हीरे-जवाहरात, न जाने क्या-क्या। इस दूसरे दल (ईरानी दल) ने मामूली सी चीज़ें मँगाई। ख़लीफ़ा को लगा, यह कैसी कलाकृति बना पायेंगे। ठीक है, जो चाहे करने दो। इकत्तीसवें दिन देखा जाएगा। वह दिन आया। सभी कलाकृतियों को आँकने के बाद चीनी दल के चित्र को देखने आये और बस, दंग रह गये कि ऐसी कृति कोई कर पाता है! वह इतनी बढ़िया, इतनी बेजोड़ थी कि पूछो मत! आधा घंटा उस चित्र को निहारते रहे। उनको याद दिलाया गया कि प्रभु, एक और चित्र है, उसको भी आँक लीजिए। अनिच्छा से उन्होंने कहा, 'ठीक है, चलो, उसे भी देख लेते हैं।' परदा हटाया गया और आश्चर्य से मानो वे बेहोश ही हो गये। उस दल ने सतह को पॉलिश कर दिया था। ऐसी पॉलिश कि सतह चमक उठी थी और सतह पर चीन की कलाकृति का प्रतिबिंब अपनी असीम, अद्वितीय सुन्दरता से भरपूर चमक रहा था, मूल से भी कहीं अच्छा!

आपको कोई रचना नहीं करनी है! तो सहज मार्ग में गुरुदेव का पहला कार्य सफ़ाई है। यदि आप बर्तन में दूध ख़रीदना चाहते हैं तो क्या उसे पहले साफ़ नहीं करते? तो, पहले चीज़ों को हटाने और फिर उसी चीज़ का उत्थान करने से परिवर्तन होता है।

**सफ़ाई के कार्य में प्रशिक्षकों की भूमिका :** मालिक के आध्यात्मिक कार्य में सफ़ाई का कार्य प्रशिक्षकों के काम का महत्वपूर्ण भाग है। आप इस काम को यह कहकर छोटा मत समझिए कि सफ़ाई में क्या रखा है, मैं कोई जमादार नहीं हूँ। आप याद कीजिए कि जब बाबूजी डेनमार्क आए थे, तब आपने उनके रहने की जगह को कितने प्रेम से तैयार किया था। उस मकान को उनकी उपस्थिति के लिए तैयार करने में आपने कितना ख़र्चा किया, कितना समय लगाया, कितना प्रेम दर्शाया, जबकि वे केवल थोड़े दिनों के लिए वहाँ रहने आए थे। तो फिर **जिस मकान में उनकी उपस्थिति शाश्वत रूप से होनेवाली है,** उसमें आपको कितना समय लगाना चाहिए।

इसलिए सफ़ाई और यात्रा का महत्व याद रखिए। सफ़ाई के बिना यात्रा नहीं हो सकती, यह सम्भव नहीं है। इसीलिए प्रशिक्षक का महत्व है। लोग प्रायः पूछते हैं कि प्रशिक्षक क्यों हों? क्या बाबूजी इसे स्वयं नहीं कर सकते? निःसन्देह वे इसे कर सकते हैं, लेकिन उन्हें उनके काम में मदद करने के लिए, अभ्यासियों पर काम की गति बढ़ाने के लिए, उनके लक्ष्य की उपलब्धि शीघ्र सम्भव कराने के लिए वे प्रशिक्षकों का उपयोग करते हैं, उस काम के लिए, जिसे हम गन्दा काम कहते हैं - सफ़ाई। एक अर्थ में यह गन्दा काम, दूसरे अर्थ में अत्यन्त पवित्र भी है। जब आप एक व्यक्ति को मोक्ष के लिए तैयार कर सकते हैं, तो यह किसी भी दृष्टि से गन्दा कार्य नहीं है। यात्रा का यही महत्व है और इसे सही तरीक़े से ही समझना चाहिए, क्योंकि यदि हमें यात्रा के सम्बन्ध में सही समझ नहीं होगी, तो हम सफ़ाई के अर्थ और उसके महत्व को समझ नहीं पाएँगे। न अपने लिए और न उनके लिए, जो हमारे पास आते हैं। **सफ़ाई के बिना कोई यात्रा नहीं होती। इसे लाल स्याही से लिख लीजिए।**

❀❀❀

# प्राणाहुति

अपने गुरु की कृपा से एक बड़े रहस्य या भेद को प्रकट करने की कोशिश करूँगा जो सामान्य लोग नहीं जानते। यह बहुत आश्चर्य की बात होती है, जब भगवान श्रीकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द या मेरे गुरुदेव जैसी महान विभूति, एक व्यक्ति के जीवन की समग्र धारा को बदल देते हैं। हमारे लिए यह परमावश्यक है कि हम एक ऐसे मार्गदर्शक की तलाश करें जो अपनी शक्ति से हमें अधिक से अधिक ऊँचा उठा सके। इस शक्ति को प्राणाहुति कहते हैं। यह शक्ति एक विशुद्ध मन के ज़रिये कार्य करती है। प्राणाहुति को इच्छाशक्ति से क्रियान्वित किया जाता है, जो सदैव प्रभावी होती है। यदि एक आध्यात्मिक प्रशिक्षक, प्रशिक्षार्थी के मन को मोड़ने के लिए अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करता है तो यह प्रभावी होता है तथा बहुत सुन्दर परिणाम लाता है।

प्राणाहुति कैसे काम करती है? योग्य प्रशिक्षक, योगिक प्राणाहुति की शक्ति से प्रशिक्षार्थी के मन की निम्न प्रवृत्तियों को निर्बल कर देता है, और उसके हृदय के अन्तरतम में दिव्य प्रकाश का बीजारोपण करता है। इस प्रक्रिया में प्रशिक्षक अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करता है जिसके पीछे अनन्त दिव्यता का आधार है। हो सकता है, प्रशिक्षार्थी प्रारम्भ में कुछ भी अनुभव न करे। कारण यह है कि उसकी आदत केवल इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने की होती है। कुछ समय पश्चात वह ऐसी प्राणाहुति का प्रभाव अनुभव कर सकता है, जिसका आभास उसके अंगों की क्रिया व मन की वृत्तियों में सूक्ष्म परिवर्तन के रूप में होता है।

यदि आप उपनिषदों, विशेष रूप से केनोपनिषद का सन्दर्भ देने की अनुमति दें - उसमें एक शिष्य अपने गुरु से पूछता है, 'वह क्या है जिसके द्वारा आँख देखती है? नाक गंध ग्रहण करती है? कान सुनते हैं?' आदि-आदि। गुरु का उत्तर है - ये आँखें नहीं हैं जो देखती हैं बल्कि

वह आँख की आँख है जो देखती है। इसी प्रकार जो सुनता है, वह कानों का कान है। जो बोलता है, वह मुँह नहीं बल्कि उसके पीछे कोई असली बोलनेवाला है। महर्षि आगे और कहते हैं कि जीवन का अस्तित्व किसी निहित उच्चतर जीवन की सत्ता के कारण है और इसे 'प्राणस्य प्राणः' या 'प्राण का प्राण' कहा जाता है। मेरे गुरुदेव कहते हैं कि जैसे शरीर आत्मा के कारण जीवित रहता है, वैसे ही आत्मा भी किसी अन्य अस्तित्व के कारण बनी रहती है, और यह अस्तित्व है, जीवन की परम-शक्ति या प्राण-शक्ति।

सहजमार्ग में हमारी यह महत्वपूर्ण मान्यता है कि शरीर आत्मा के सहारे जीवित रहता है और जैसा कि हम जानते हैं 'अनन्त की ओर' अपंनी यात्रा में आत्मा, काल के भी परे जा सकती है। प्राणाहुति ही इसका जीवन है। इसी से यह जीवित रहती है। इसीलिए प्राणाहुति को *प्राणस्य प्राणः* कहा गया है। प्राणाहुति का देश और काल से कोई लेना-देना नहीं होता।

शरीर का जीना और बढ़ना भौतिक स्तर पर होता है इसलिए वह भौतिक भोजन पर टिका रहता है। लेकिन आत्मा का स्वभाव आध्यात्मिक होने के कारण उसे उसी स्तर के भोजन की ज़रूरत होती है। सद्गुरु, अभ्यासी को अपनी प्राणाहुति द्वारा आध्यात्मिक ख़ुराक देकर उसको पुष्ट करते हैं। गुरुदेव ने प्राणाहुति को *स्पिरिचुअल* फूड (आध्यात्मिक भोजन) कहा है।

शरीर ज़िन्दा है, क्योंकि उसमें आत्मा मौजूद है। आत्मा प्राणाहुति से ज़िन्दा रहती है और उस प्राणाहुति को हम ईश्वरीय एसेन्स (तत्व) कह सकते हैं। संस्कृत में उसे प्राणस्य प्राणः कहते हैं जिसका मतलब होता है आत्मा की आत्मा। तो असल में प्राणाहुति के बिना आत्मा बेजान वस्तु जैसी होती है। पहली तवज्जोह ही आत्मा को जीवित कर देती है। वह स्वयं ईश्वर का स्पर्श है।

हमारी सहज मार्ग पद्धति में प्राणाहुति के द्वारा साधक के हृदय में प्राणशक्ति का संचरण हमारे गुरुदेव की दिव्य

शक्ति द्वारा कराया जाता है। यह उनकी ही सामर्थ्य है कि उन्होंने यह संचरण प्रशिक्षकों के माध्यम से कराना भी सम्भव बना दिया है। प्रशिक्षकों को यह दायित्व दिया गया है कि जो साधक उनके पास आयें, वे उन्हें प्राणाहुति दें। यह प्राणाहुति ऐसी चीज़ है जिसका अनुभव किया जाना चाहिए और जिसका अनुभव किया जा सकता है। आप इस बात से सहमत होंगे कि सम्पूर्ण जीवन ही संचरण है। प्रत्येक कर्म जो हम करते हैं या जिसके द्वारा हम कुछ प्राप्त करते हैं, उसमें संचरण निहित होता है। किन्तु सहज मार्ग के संचरण में, प्राणाहुति जीवन के जीवन का सर्वोच्च उपहार है। यही वह विशेषता है जो राजयोग की सहज मार्ग पद्धति को योग की अन्य वर्तमान पद्धतियों से पृथक करती है।

हमारे आदिगुरु, फ़तेहगढ़ निवासी समर्थ गुरु श्री रामचन्द्र जी महाराज ने इस क्षमता को पुनर्जीवित किया, जिससे वे योगिक या प्राण ऊर्जा अपने अस्तित्व के केन्द्र से दूसरे व्यक्ति के अस्तित्व के केन्द्र में प्रेषित करते थे। यह कला उन्होंने अपने योग्य शिष्य यानी मेरे गुरुदेव को प्रदान की जिन्होंने उसे और परिष्कृत किया। यह प्राणाहुति ऐसी चीज़ है जिसे कोई भी अल्पकाल के अभ्यास में ही अनुभव कर सकता है। यह प्राणाहुति ही है जो सहज मार्ग को अन्य योग पद्धतियों तथा मनुष्य के विकास की अन्य विधियों से अलग करती है। मेरे गुरुदेव कहते हैं कि जब अभ्यासी के हृदय के भीतर प्राणाहुति दी जाती है तब अभ्यासी अपने से उच्च शक्ति से भर जाता है। इसलिए उसका विकास या प्रगति न केवल अधिक गतिशील हो जाती है बल्कि एक प्रकार से प्रगति की उसकी अपनी क्षमता पर निर्भर नहीं करती। अतः अभ्यासी की वर्तमान स्थिति का कोई सम्बन्ध, जो वह बनना चाहता है, उससे नहीं रहता। आज प्राणाहुति मिलना सम्भव होने के कारण, एक ही वार में मानव की वर्तमान स्थिति के सारे अन्तर मिट जाते हैं।

आध्यात्मिक उन्नयन का यह काम, जो अभ्यासी के अपने प्रयत्नों द्वारा दशकों में भी असम्भव होता, प्राणाहुति के द्वारा कम से कम समय में सम्भव हो जाता है। शास्त्रों

में वर्णित पुरानी पद्धतियों के अनुसार ध्यान का अभ्यास करने पर अकसर गम्भीर कठिनाइयाँ खड़ी हो जाती हैं। इन प्राचीन पद्धतियों के अनुसार मन की अनवरत क्रियाशीलता को रोकने के लिए लगातार उससे संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष पूरे साधना-काल में चलता रहता है और सफलता के नाम पर कुछ नहीं मिलता। इस तरह ध्यान बिलकुल नहीं हो पाता और साधक का सारा समय मन की वृत्तियों से जूझने और उनका दमन करने की कोशिश में ही नष्ट हो जाता है। सहज मार्ग की इस साधना में इस बहुत बड़ी कठिनाई को दूर हटाने के लिए हम अपने को ऐसे सद्गुरु की शक्ति से जोड़ लेते हैं, जिसका मन पूर्णतया सुनियमित एवं सन्तुलित हो चुका है। ऐसा करने से गुरु की शक्ति का अभ्यासी में संचार होने लगता है और उसकी मानसिक वृत्तियाँ अपने आप सुनियमित होने लगती हैं।

मालिक अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा का ही सम्प्रेषण करते हैं, जिसे उन्होंने अपने गुरु से अपनी योगिक दक्षता के कारण प्राप्त किया है। उनके गुरुदेव ने सदियों पूर्व खोई हुई इस विद्या को पुनर्जीवित किया था और उन्होंने ही मेरे गुरुदेव के अन्दर प्राणाहुति देने की सम्भावना के द्वार खोले थे। इस बात की पुनः खोज हो गई है कि एक प्राणी दूसरे प्राणी में यह ऊर्जा सम्प्रेषित कर सकता है और यह किसी भी तरह सिर्फ़ इसलिए सीमित नहीं हो जाती क्योंकि यह एक प्राणी से आ रही है। यह वास्तव में अपनी असली प्रकृति के कारण असीम होती है क्योंकि यह समस्त ऊर्जाओं के परम स्रोत से जुड़ी होती है। इसलिए इस सम्प्रेषण की कोई हद या सीमा नहीं होती और जो सम्प्रेषण होता है उसकी मात्रा का कोई अन्त नहीं होता। इसलिए एक व्यक्ति को, या सैकड़ों को या करोड़ों को प्राणाहुति देना सम्भव है, इसकी कोई सीमा नहीं है। इसके अलावा गुरुदेव प्राणाहुति यहाँ दे सकते हैं, या जहाँ भी लेने वाला व्यक्ति हो, वहाँ दे सकते हैं।

इस प्राणाहुति के द्वारा गुरुदेव हमारे हृदय में अपनी स्वयं की शक्ति संचरित कर देते है। इसका तात्पर्य यह है

कि किसी और की शक्ति जो हमारे भीतर डाल दी गई है, उसके ज़रिए, हमारा उन्नति करना सम्भव हो गया है। हमें बैसाखी का सहारा मिल गया है। अपने ऊपर निर्भर होने की जगह अब हम उन पर निर्भर हो गए हैं, क्योंकि वे हमारी आत्मा के लिए वह भोजन देते हैं जिसकी ज़रूरत, हमें शीघ्र उन्नति करने के लिए होती है - अब तक जिस हद तक मनुष्य की उन्नति सम्भव मानी जाती थी, उससे भी आगे, शीघ्र उन्नति करने के लिए। ऐसा इसलिये है कि वे अपनी सम्पदा हमें देने में सक्षम हैं।

उनकी शक्ति हमारे मन पर बने सभी पुराने संस्कारों को मिटा देती है - चाहे वे अच्छे संस्कार हों या बुरे। संस्कार हमारे व्यवहार पर, हमारे अस्तित्व पर असर डालते हैं। इस अर्थ में हमारा अतीत हम पर एक बोझ है। प्रतिदिन हम और संस्कार जोड़ते जाते हैं, और इस प्रकार हम अपने ऊपर बोझ बढ़ाते जा रहे हैं। प्रत्येक दिन जो बीतता है वह हमारे अतीत में जुड़ जाता है। इस प्रकार बजाय कम करने के, हम अपना बोझ बढ़ा रहे हैं। मेरे गुरुदेव इस भार को कम कर सकते हैं, कम क्या, वे अपनी शक्ति से पूरी तरह इसको समाप्त कर देते हैं और इस प्रकार वे अतीत के सभी संस्कारों को दूर कर देते हैं। उनकी प्राणाहुति की सहायता से हम अपने अतीत से मुक्ति पा सकते हैं। यह प्राणाहुति, हमारी उन्नति के लिए उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा को हमारे भीतर सम्प्रेषित करती है और इसलिए हमारे विकास की सम्भावनायें असीम हैं।

मालिक कहते हैं कि यहाँ दिव्य ऊर्जा का उपयोग मनुष्य के परिवर्तन के लिए किया जाता है। परन्तु कुछ ऐसे भी मामले हैं, जहाँ व्यक्ति को प्राणाहुति देने पर वह उससे टकरा कर वापिस आ जाती है। यह ऐसा है कि मानों वह उसमें समाहित नहीं हो पाती। तो प्राणाहुति को ग्रहण करने से पूर्व, मालिक को स्वीकार करना अधिक महत्वपूर्ण है। जो मालिक को स्वीकार नहीं करता, वह उस प्राणाहुति को भी स्वीकार करने में सक्षम नहीं है जो उसे परिवर्तित कर सकती है। और मालिक को स्वीकार करने की प्रक्रिया कब शुरू होती है? जब हम उन्हें देखते हैं,

जब हम उनके साथ चलते हैं, जब हम उनसे जुड़े हुए रहते हैं, तब हममें उनके प्रति प्यार पनपने लगता है। हम उन्हें हृदय में संजोए रखते हैं, हम उन्हें बेहद चाहने लगते हैं और फिर हम उन जैसा बनना चाहते हैं।

मालिक कहते हैं कि यहाँ दिव्य ऊर्जा का उपयोग मनुष्य के परिवर्तन के लिए किया जाता है। परन्तु कुछ ऐसे भी मामले हैं, जहाँ व्यक्ति को प्राणाहुति देने पर वह उससे टकरा कर वापिस आ जाती है? यह ऐसा है कि मानों वह उसमें समाहित नहीं हो पाती? तो प्राणाहुति को ग्रहण करने से पूर्व, मालिक को स्वीकार करना अधिक महत्वपूर्ण है? जो मालिक को स्वीकार नहीं करता, वह उस प्राणाहुति को भी स्वीकार करने में सक्षम नहीं है जो उसे परिवर्तित कर सकती है? और मालिक को स्वीकार करने की प्रकिया कब शुरू होती है? जब हम उन्हें देखते हैं, जब हम उनके साथ चलते हैं, जब हम उनसे जुड़े हुए रहते हैं, तब हममें उनके प्रति प्यार पनपने लगता है। हम उन्हें हृदय में संजोए रखते हैं, हम उन्हें बेहद चाहने लगते हैं और फिर हम उन जैसा बनना चाहते हैं।

मालिक, प्राणाहुति को शक्तिरहित शक्ति कहा करते हैं। मेरे अनुसार यह सिर्फ़ उनका प्रेम है, हमारे लिए, क्योंकि वे केवल प्रेम ही सम्प्रेषित करते थे। यह न शक्ति है, न कुछ और। मैं यह समझता हूँ और इसके लिए मेरे पास वजह भी है कि उन्होंने अपने प्रेम को ही हमारे दिलों में उंडेल दिया था, जिसे हम प्राणाहुति कहते हैं। शक्तिरहित होने के कारण यह अनन्त की सीमाओं तक और अनन्त समय तक काम कर सकती है। समय व स्थान की बाधाओं को लाँघकर, मात्र प्रेम ही काम कर सकता है, कोई दूसरी शक्ति नहीं।

मैं समझता हूँ, मालिक और उनकी प्राणाहुति, दोनों एक ही हैं। क्योंकि एक बार मैंने उनसे पूछा था, 'आप प्राणाहुति देते हैं तो क्या होता है? आप मुझे प्राणाहुति दे रहे हैं, मान लीजिए आप शाहजहाँपुर में हैं, मैं मद्रास में हूँ, तब क्या होता है?' उन्होंने कहा, 'मेरा सूक्ष्म स्व तुम तक पहुँच

जाता है। यह चमत्कार देखिए! यदि दिव्यत्व का प्रमाण चाहिए तो वह यही है कि प्राणाहुति, बिना किसी सीमा के, किसी भी जगह से कहीं भी, कभी भी पहुँच सकती है।

क्या हम प्राणाहुति महसूस करते हैं? हम प्राणाहुति कभी महसूस नहीं करते। हम प्राणाहुति का प्रभाव महसूस करते हैं। प्राणाहुति तो सदा हृदय में जाती है परन्तु इसका प्रभाव कहीं भी महसूस किया जा सकता है। जैसे हम खाते मुँह से हैं, परन्तु खाना पेट में महसूस करते हैं और यदि किसी को एसिडिटी हो तो दर्द यहाँ, पेट में महसूस होता है। इसलिए होता क्या है कि जैसे बिजली के प्रवाहित होने के लिए, यदि बल्ब है तो आप रोशनी देखते हैं, यदि पंखा है तो आप इसे हवा फेंकते हुए देखते हैं, यदि कोई मोटर है तो वह घूमती है। इसलिए हमें प्राणाहुति या उसके प्रभाव को समझना चाहिए। प्रभाव कहीं भी हो सकता है। यह बिन्दु दर बिन्दु बदल जाता है।

प्राणाहुति का स्थान सफ़ाई के बाद है। वास्तव में सफ़ाई के बिना प्राणाहुति व्यक्ति का नुकसान करती है, इसलिए केवल पर्याप्त सफ़ाई के बाद ही प्राणाहुति देनी चाहिए। इसीलिए प्रारम्भ में हम यह परिचयात्मक तीन सिटिंग देते हैं, जो केवल सफ़ाई को समर्पित होती हैं। प्राणाहुति बिल्कुल नहीं दी जाती।

सिटिंग के दौरान हम जो हल्कापन महसूस करते हैं, वह प्राणाहुति के कारण नहीं, बल्कि सफ़ाई के कारण होता है। सफ़ाई से हल्कापन आता है। हल्का हो जाने पर प्राणाहुति ध्यान में हमें गहराई का एहसास कराती है। प्राणाहुति जब स्थूल होती है, तो कम्पन आदि तमाम चीज़ें पैदा होती हैं। यह जितनी सूक्ष्म होगी, ध्यान के दौरान हमें लगेगा कि हम कुछ भी महसूस नहीं कर रहे हैं। लेकिन सिटिंग की समाप्ति पर हमें अन्तर महसूस होगा।

प्राणाहुति दबाव पैदा नहीं कर सकती। जब हमारी संरचना स्वच्छ होती है, तो हम विचारहीनता या लगभग विचारहीनता की स्थिति में होते हैं। विचारशून्यता कोई आध्यात्मिक स्थिति नहीं हैं। यह दर्शाता है कि हमारा अन्तर

लगभग सारी स्थूलताओं से खाली हो गया है और अब अन्दर से कोई विचार नहीं आ रहा है। हम केवल बाहर से विचार ग्रहण कर सकते हैं। अब हम पवित्र हैं। यह कोई दिव्य विचार हो सकता है या मालिक का निर्देश भी हो सकता है। यह बाहर से आते हैं। यह हमारे विचार नहीं हो सकते। यह हमें परेशान नहीं करते। ऐसी स्थिति में जब हम प्राणाहुति पाते हैं, तो डूब जाते हैं।

प्राणहुति को प्राणस्य प्राणः यानी जीवन का जीवन से परिभाषित किया जाता है। जो पहले सिर्फ़ एक यान्त्रिक "मैं" था, वह अब एक वास्तविक जीवन्त "मैं" बन गया है। मेरे विचार से यह भी एक कारण है, जिससे कभी-कभी अभ्यासियों के साधना शुरू करने से पहले की अपेक्षा, अभ्यासी बनने के बाद अहं ज़्यादा हो जाता है। जब सुषुप्त (सोता हुआ) "मैं" जागृत हो जाता है तो उसे ख़ुद का बोध ज़्यादा हो जाता है, और यह सही भी है। इसी को अहं कहते हैं। अपने ख़ुद का ज़्यादा बोध हो जाना। इसीलिए जिस दिन से हम पहली बार प्राणाहुति पाते हैं और मालिक हमें असली जीवन - जीवन में जीवन - से अवगत करा देते हैं, यही वह क्षण है, जब हमें वह जीवन 'उसे' समर्पित कर देना चाहिए। यह जो नई जिन्दगी हमें मिली है वह हमारी धरोहर नहीं है। क्योंकि यह उसने बनाई है, उसने हमें दी है, इसलिए यह उसी की है।

वास्तव में हमारा जीवन सही मायने में, प्रभावी तौर से, उस दिन शुरू होता है जब हमें अपने मालिक के हाथों पहली प्राणाहुति मिलती है। इसलिए एक मायने में यह हमारा जन्म दिन है जिसे हम मना रहे हैं। जब यहाँ मालिक के जन्म दिन पर हम उनको एक विशेष प्रकार से याद करते हैं तो यह वास्तव में हमारा जन्म दिन है जिसे हम याद करते हैं। हम अपनी कृतज्ञता, अपना प्रेम अर्पण कर कहते हैं। "मालिक, आपने आज ही के दिन मुझे जीवन्त व सक्रिय किया था। मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूँगा क्योंकि आपने मुझे जीवन्त बनाया था। मैं तो सिर्फ़ एक स्वचालित यन्त्र था जो एक आन्तरिक मोटर के द्वारा, जिसे

मैं बेवकूफ़ी से अपना दिल कहता था, पहियों पर इधर-उधर घूम रहा था। आपने इस दिल में प्रवेश करके और मेरे दिल का दिल बनकर इस दिल को जीवन्त बना दिया। मुझे एक उद्देश्य देकर मेरे जीवन को अर्थपूर्ण बना दिया।"

❀❀❀

## गुरु - ध्येय है

"गुरु ही ध्येय है,
क्योंकि 'वह' ईश्वर है।
गुरु ही पद्धति है,
क्योंकि 'वह' हमें सिखाते हैं कि
क्या करना है।
गुरु ही मिशन है,
क्योंकि मिशन
'उसकी' कृति है।"

- चारीजी -

"गुरु एक जीता-जागता शास्त्र हैं।
यदि वे जो कहते हैं,
वह शास्त्रों के अनुसार है, तो उसे स्वीकार करो।
यदि नहीं, तो शास्त्रों को
खिड़की से बाहर फेंक दो।"

# डायरी लेखन

हम सब को डायरी रखने को कहा गया है। यह सुझाव दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी डायरी दो प्रकार से लिपिबद्ध करे। पहला तुरन्त ध्यान के पश्चात, जो भी अनुभव या दशा ध्यान में अवगत हुई। दूसरा जो परिवर्तन उसे अपनी आन्तरिक मनोदशा में दिखाई दिया - जैसे गुस्सा कम आना या पत्नी से लड़ाई में कमी इत्यादि। जो भी अनुभव आपकी आध्यात्मिक प्रगति में महत्वपूर्ण हैं, उन सब को डायरी में अवश्य लिखें। हमेशा यह कठिनाई महसूस हुआ करती है कि या तो हम डायरी लिखना आरम्भ ही नहीं करते या हर ध्यान के बाद एक पूरा पोथा लिख देते हैं - दोनों ही चरम सीमाएँ हैं।

आप तो जानते ही हैं कि यह फैसला करना कि क्या लिखने योग्य है, क्या नहीं - कितना कठिन है। आप जो कुछ लिखना चाहते हैं उसमें कुछ ऐसा भी होता है, जो उल्लेखनीय नहीं होता। कौन अपनी आत्मा को खोलकर रख देना चाहता है, जिसे किसी के द्वारा पढ़े जाने की सम्भावना है। सो, मैं भी बहुत सतर्क था कि इस में कैसे लिखूँ जो सब पढ़ सकें। इस कारण मैंने उसमें जो भी लिखा, वह निर्जीव या अहानिकारक था। उस को पढ़ना, या दुबारा पढ़ना मेरे लिए भी अरुचिकर था। जब मेरी डायरी का प्रथम अंक प्रकाशित होगा तब आप को पता चलेगा कि उसमें मिशन के उस समय के प्रसिद्ध व्यक्तियों, जैसे डा0 वरदाचारी आदि के साथ विभिन्न विषयों पर बातचीत व वार्तालाप हैं। उसमें मेरे आध्यात्मिक अनुभवों और प्रगति के बारे में विशेष कुछ नहीं है, क्योंकि भेद खुल जाने के डर से मैं अपने अन्तःकरण को बाह्य संसार के सामने नहीं रखना चाहता था।

परन्तु आध्यात्मिकता के क्षेत्र में प्रत्येक को पूर्ण रूप से, विशेषकर अपने साथ, सत्यवादी होना चाहिए। जब हम डायरी लिखना आरम्भ करते हैं तो हमें किसका भय होता है। हमें भय होता है आलोचना का, कि लोग उंगली

उठायेंगे और कहेंगे "अच्छा, तो तुम यह हो।" जब तक हमें अपने आप से भय है या अपने ही सम्बन्ध में अपने विचारों के परिवर्तन का भय है, तब तक हम ईमानदारी से, जैसे डायरी लिखनी चाहिए, लिख ही नहीं सकते क्योंकि जो हम अपने बारे में सोचते हैं, और जो दूसरे हमारे बारे में सोचते हैं, हम इसका तालमेल चाहते हैं। अन्ततः वही महत्वपूर्ण है जो हम अपने बारे में सोचते हैं। इसकी किसे परवाह है कि दूसरे लोग हमारे विषय में क्या सोचते हैं। जब उनका कथन हमारे विचारों की पुष्टि नहीं करता तो हमें दुख होता है। इसलिए हम डायरी लिखने से कतराते हैं और न लिखने के बहाने ढूँढ़ते हैं, जैसे समय की कमी, क्या लिखें आदि-आदि। ये केवल अपने आप को भुलावा देने के बहाने हैं।

अगर तुम गुरुदेव की राय की क़दर करते हो तो अपने बारे में तुमने जो कुछ भी अनुभव किया है उसको लिखने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तुम लिखो या न लिखो, वे तुम्हारे बारे में सब कुछ जानते हैं, और डायरी तो केवल गुरुदेव ही देखेंगे।

मैंने बाबूजी से पूछा, "बाबूजी, हमें अपनी डायरी में क्या लिखना चाहिए? उन्होंने बड़े सरल व निष्कपट भाव से कहा, "सब कुछ - जो तुम देखते हो।" मैंने कहा, "सब कुछ किसके बारे में?" (हँसी) उन्होंने कहा, "अपने बारे में।" मैंने कहा, "बाबूजी, वही तो कठिनाई है।" उन्होंने उत्तर दिया, "देखो, हमें अपने आप से कुछ नहीं छिपाना चाहिए।"

इसलिए आवश्यक बात, जो हमें अपनी डायरी लिखते वक़्त देखनी है या हममें होनी चाहिए, वह है निडरता। "हाँ।" मैंने यह किया है। तो क्या हुआ? अगले पृष्ठ को देखो कि मैं इससे कुछ अच्छा हो गया हूँ, और तीसरे पृष्ठ पर देखो कि मैं उससे भी कुछ और अच्छा बन गया हूँ। यह एक मकान की नींव की भाँति है। जब हमें एक नींव खोदनी होती है, तो तमाम गन्दगी, मिट्टी, कंकड़ पत्थर सामने आते हैं। कंकरीट की एक सुन्दर तह लगाई जाती है, और तब उस पर मकान बनता है। हालाँकि, बाद में

नींव ढक जाती है। परन्तु एक सदाचारी जीवन में किसी को ग़लतियाँ, कमज़ोरियाँ, मूढ़ता का अनावरण होना ही उसे आध्यात्मिक खोज की ऊँची मंज़िलों तक पहुँचाता है, जिससे यह पता चलता है कि उच्चतम दिव्यता की इस आध्यात्मिक खोज के रास्ते में आप किस प्रकार शुरू कर सकते हैं और किस प्रकार अन्त कर सकते है।

यदि यह लिपिबद्ध न किया जाए तो लोग यह नहीं समझेंगे कि एक पापी को भी अवसर मिलता है। सबसे अधिक घृणित पापी को भी अवसर मिलता है। हत्यारों को भी अवसर मिलता है। बलात्कारी को भी अवसर मिलता है। यह इस विचार से नहीं कि अपनी डायरी में अपनी ग़लतियों को लिखकर स्वयं की प्रशंसा या लल्लोचप्पो कर रहे हैं। परन्तु यह बताने के लिए है कि "लो, देखो, मैं ऐसा था और अब ऐसा बन गया हूँ। तुम भी बन सकते हो। इस चिन्ता को छोड़ दो कि तुम क्या थे। सिर्फ़ चिन्ता इसकी करो कि, तुम्हें बनना क्या है। पूरी ईमानदारी से लिपिबद्ध करो, जिससे कि भविष्य में सभी लोग मेरी आत्मकथा से फ़ायदा उठा सकें, यह देखते हुए कि मैं भी एक साधारण मनुष्य ही था, मेरे अन्दर भी सारी मानवीय कमज़ोरियाँ मौजूद थीं, फिर भी अपने मालिक की मदद से यह बनना सम्भव हो सका, जो मैं बन पाया हूँ। निश्चित रूप से तुम भी मुझसे भिन्न नहीं हो। बुनियादी तौर पर सब मानव या मानवीय जीवन के बुनियादी स्तर पर हम सब मनुष्य एक जैसे ही हैं। उसमें क्या बात है यदि मैं किसी दूसरे से कुछ भिन्न कर सका?

इसलिए एक जीवनी-लेखक वह महान कार्य नहीं कर सकता जो एक आत्मकथा-लेखक अपने लिए तथा भावी पीढ़ी के लिए करता है। वह अपने जीवन का एक निष्पक्ष चित्रण प्रस्तुत करता है और जब हम आपसे अपनी डायरी लिखने को कहते हैं तो जरूरत प्रारम्भिक, निडरता और साहस की है। "हाँ, मैंने यह किया है। इसलिए तुम भी और भावी पीढ़ी भी करेगी क्योंकि शुरुआत हमेशा कीचड़ और गन्दगी से ही होती है। देखिये, जब आप कोई पौधा लगाते हैं तो यह भी मिट्टी और कीचड़ में लगता है।

परन्तु जब वह पेड़ बन जाता है तब वह ऊपर हवा में होता है। जब फूल खिलते हैं, तब वह ऐसी ख़ुशबू देते हैं जिसे उपनिषदों में कहा गया है कि "आप एक अच्छे, कुलीन मनुष्य को या दिव्यात्मा को कैसे पहचानेंगे? यथा वृक्षस्य सम्पुट पुष्पतस्य दूरज्ञं तेव - जब तुम जानना चाहते हो कि पेड़ कहाँ है, अपनी नाक से सूंघते हुये उसकी गन्ध का अनुकरण करते जाओ और पेड़ मिल जायेगा।"

तो हमें किसी सूचना की ज़रूरत नहीं है। हम इतना ही चाहते हैं कि आपने ध्यान के दौरान जो महसूस किया और बाद में, उसी दिन या कुछ दिनों के अन्तराल में, उस सप्ताह में या कभी भी, आपमें क्या-क्या परिवर्तन आए, इनका अभिलेख हो। मार्गदर्शन के लिए बाबूजी महाराज की आत्मकथा - भाग (1) का हवाला लें, क्योंकि उसमें गुरुदेव ने कई जगह लिखा है, "कोई परिवर्तन नहीं हुआ।" मैंने उनसे पूछा भी, लिखके पूछा कि "आप क्यों मुझसे इस चीज़ को छपवाना चाहते हैं कि कोई परिवर्तन नहीं हुआ। हर दिन आपने यही नोट किया है।" मुझे लगा कि यह कागज़ का अनावश्यक ख़र्चा है। उन्होंने मुझे उत्तर दिया, "यह बताता है कि मैं ख़ुद का अध्ययन कर रहा हूँ।" और यह बिलकुल सही बात है। क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि हममें परिवर्तन होते हैं लेकिन हम उनपर ध्यान नहीं देते। अतः डायरी लिखने में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें ख़ुद को जानने की आवश्यकता का एहसास होता है।

डायरी लिखने का एक उद्देश्य यह भी है कि जो कुछ आप अनुभव करते हैं, उसे लिख दें और भूल जायें। दुर्भाग्य से आप उसे लिखते नहीं परन्तु हर समय याद रखते हैं। अगर हम लिख कर भूल जायें तो भी रिकार्ड रहता है, जिससे मैं दो साल बाद भी तुलना कर सकता हूँ। हमें उस आदमी की तरह होना चाहिए जो पहाड़ पर चढ़ते समय केवल सामने की ओर देखता है। और जब वह ठीक चोटी पर पहुँचकर नीचे की ओर देखता है, तब उसे पता चलता है कि वह कितने भयानक, ख़तरनाक मोड़ों, घाटियों, दरारों और खड़ी चट्टानों से गुज़रकर आया है। अगर उसने चढ़ते

समय इनकी ओर देख लिया होता तो शायद उसने अपनी कार सड़क से ही वापस मोड़ ली होती और यात्रा वहीं खत्म हो जाती!

मिशन की डायरी से . . .

डायरी सिर्फ़ एक ऐसी किताब ही नहीं होती जिसमें हम अपने विचार और दिनभर के कार्यकलाप लिखते हैं। निःसंदेह यह भी है, परन्तु यह किसी की आध्यात्मिक उन्नति तथा विकास का क्रमिक लेखा-जोखा भी है। कोई अपनी लिखी डायरी को एक साल बाद पढ़ता है, तब उसे अपने क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। जब कोई पहाड़ पर चढ़ता है तो उसे सड़क के टेढ़े-मेढ़े मोड़ तथा सड़क के आगे व पीछे का कुछ भी, बड़ी कठिनाई से दिखाई पड़ता है। परन्तु जब वह काफ़ी ऊँचाई पर पहुँच जाता है तब वह अपने पीछे की ओर उस टेढ़ी-मेढ़ी सड़क को देख सकता है, जिसपर वह चलकर आया है। वस्तुतः डायरी रखने से हम अपने विकास की समझ तथा ज्ञान पा सकते हैं।

डायरी वास्तविक घटनाओं और विचारों का लेखा-जोखा होनी चाहिए, जो न बढ़ा-चढ़ाकर लिखे जाएँ और न ही ज़रूरी तथ्य छिपाये जाएँ। वास्तव में यह निष्कपट व स्पष्ट लेख होना चाहिए जिसमें न कुछ छिपाया गया हो और न ही कुछ छोड़ा गया हो। ऐसा लेखा एक मनुष्य को अपने बारे में स्पष्टता से जानना आसान बना देता है जिससे उसे अपनी दशा का मूल्यांकन करना सरल व आसान हो जाता है। और धीरे-धीरे वह अपने आपको जैसा वह है वैसा ही, बिना किसी शर्म व अपराधिक भाव से स्वीकार करने लगता है। साथ ही साथ वह मालिक की कृपा व उपलब्ध साधन से अपने को सुधारने का काम कर सकता है।

इस प्रकार डायरी एक आवश्यक, व्यक्तिगत दस्तावेज़ है जो यदि ठीक-ठीक व लगातार रखी जाये तो अपने स्वयं के मूल्यांकन तथा अपने विकास का एक फ़ायदेमन्द प्रपत्र बन जाता है।

डायरी की एक और विशेषता है कि जो अभ्यासी अपने मार्ग में ठीक से उन्नति कर सके हैं, उनकी डायरी दूसरे अभ्यासियों के निर्देशन के लिए लेखा हो जाता है, और इस प्रकार उनकी भी मदद करता है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि सब अभ्यासियों को ज़रूरी समझ आये कि वे अपनी डायरी लगातार व ईमानदारी से रखना शुरू करें।
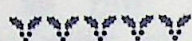
❖ प्रकृति से अपरिष्कृत रूप में जो मिलता है,
मालिक उसे सम्पूर्ण बना देते हैं।

❖ संसार से विरक्ति पाने के लिए
मालिक से लगाव बढ़ाना ही एक अचूक साधन है।

❖ मालिक चाहे हजारों मनुष्यों से घिरे हों,
हमें उनसे ही जुड़े रहना चाहिए,
न कि अपने से।

❖ मालिक वह है जो आपकी अन्तः शक्ति को
उजागर करते हैं और
उसे वास्तविक रूप प्रदान करते हैं।

❖ हमें किसी मार्गदर्शक की सेवाएँ ढूँढ़नी होगी
और केवल वही हमारा मार्गदर्शक हो सकता है
जो स्वयं रास्ता जानता है।

# सत्संग

संस्कृत में सत् का अर्थ है सत्य और *संग* का अर्थ है साथ होना। इस प्रकार सत्संग का अर्थ है - सत्य के साथ होना। (वही सत्य है, ईश्वर ही सत्य है) इसीलिये जब भी हम ध्यान करते हैं - चाहे अकेले हों या कई लोगों के साथ, हम सत्संग करते हैं। लेकिन दूसरी तरफ़ 500 या 10,000 लोग एक साथ बैठें तो उसे सत्संग तभी कहा जा सकता है जब बैठनेवाला हर व्यक्ति उस सत्य के, उस परम सत्ता की असलियत के सम्पर्क में रहे।

यदि सत्संग वास्तव में सत्संग होना है और आपको उससे लाभ पहुँचना है तो उसमें उस परमसत्ता से सम्पर्क स्थापित होना ज़रूरी है। जब भी हम सत्संग में बैठते हैं और उनकी कृपा से हमारा संपर्क उनसे हो जाता है, हम कुछ न कुछ योग्यता और क्षमता अर्जित करते हैं। जैसे-जैसे सम्पर्क की बारम्बारता बढ़ती जाती है, यह सम्पर्क मज़बूत होता चला जाता है। और एक दिन वह स्थाई प्रकृति का मज़बूत सम्पर्क बन जाता है।

यही कारण है कि हमें प्रतिदिन ध्यान करने की सलाह दी जाती है। यह ध्यान हमें तब तक करना होता है जब तक कि यह पूर्ण नहीं हो जाता। गुरुदेव ने मुझे एक बार बताया था कि अगर कोई व्यक्ति बैठकर पूर्ण ध्यान में छलांग लगाने में समर्थ हो जाता है तो फिर वह उससे बाहर नहीं निकल सकता। यही ध्यान है, वास्तविक ध्यान। यह उसी तरह है जैसे आप दरवाज़े में घुसे और घर के अन्दर आ गये।

**सत्संग क्यों करना है?**

1) भाईचारा बढ़ाने के लिए। जब हम एक साथ होते हैं, अकसर मिलते हैं तो आपस में आदर-भाव बढ़ता है। बढ़ेगा ही। जब हम किसी से बार-बार मिलते हैं, मित्रता बढ़ती है। यहाँ हम मित्र ही नहीं, एक दूसरे के भाई-बहन भी हैं। क्यों? क्योंकि हम <u>एक व्यक्ति</u> को मानते हैं। हम

एक ध्येय की ओर अग्रसर हैं। हम एक ही मार्ग के अनुगामी हैं और हम सब जिसे अपना भाग्य समझते हैं, उसी की ओर जा रहे होते हैं। तो यही भाईचारा बढ़ाने का सबसे पहला और महत्वपूर्ण क़दम है।

2) एक व्यक्ति के अकेले में बैठकर ध्यान करने की अपेक्षा जब सौ, दो सौ लोग बैठकर ध्यान करते हैं, तो उसमें दिव्यता को या दिव्य कृपा को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता अधिक होती है। मिला-जुला प्रयास एकल प्रयास के गुणन से कहीं अधिक प्रभावकारी होता है।

3) जैसा कि बाबूजी मुसकराकर कहा करते थे, 'इसलिए कि मैं कहता हूँ!' मालिक की आज्ञा का पालन। मैं इस बात को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूँ। यदि मनुष्य आज्ञाकारी होता है, तो उसका ध्येय पहले से ही सामने है।

4) साथ रहने के मौक़े का अनुचित फ़ायदा नहीं उठाना चाहिए। क्योंकि कभी-कभी मुझे लगता है यदि हम साथ रहने के बजाय अकेले रहे तो ग़लत रास्ते पर भटक जाने के मौक़े कम होते हैं। तो साथ रहने का मतलब है, मौक़ा भी, और परीक्षा भी। तो हमें उस स्तर तक अपने को उठाना है और साथ रहते हुए अपनी मान-मर्यादा को क़ायम भी रखना है।

गुरुदेव की प्रणाली की यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे जाति, भाषा, और राष्ट्रीय ष्य-मनुष्य के बीच भेद करता है लेकिन आध्यात्मिकता उन्हें जोड़ती है। यह उनके द्वारा प्रतिपादित सर्वोच्च सत्य था। उन्होंने अपने प्रथम कथन यानी सहज मार्ग के सिद्धान्त को फिर से सिद्ध कर दिया कि 'जहाँ धर्म समाप्त होता है, वहाँ से आध्यात्मिकता शुरू होती है।'

जब हम एक समूह में होते हैं, परिवर्तन सरल होता है क्योंकि तब हम एक छोटा समाज बन जाते हैं, जहाँ सब एक ही काम कर रहे हैं, एक जैसा ही सोच रहे हैं। इस प्रकार दूसरे समाज पर हमारी निर्भरता कम होती जाती है। यदि किसी जगह में आप अकेले अभ्यासी हैं तब यह

मुश्किल हो जाता है। सत्संग का महत्व यही है। सत्संग का अर्थ है एक से विचारों के मनुष्यों का साथ होना।

**सत्संग के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें :** सामूहिक सत्संग कम से कम सप्ताह में एक बार होना चाहिए। यदि दो हों तो और अच्छा है। सामान्यतया एक सत्संग बुधवार की शाम तथा मुख्य सत्संग रविवार की सुबह रखने की पद्धति है। सामूहिक सत्संगों के बीच तीन दिन का अन्तराल होना चाहिए। एक सप्ताह में दो हों तो अच्छा है। एक तो अनिवार्य है ही।

साप्ताहिक सत्संग में भाग लेना हमारा फ़र्ज़ है। उसे नियमित आदत बना लेनी चाहिए कि यदि हमने सत्संग में भाग नहीं लिया तो हम सो नहीं सकते, खा नहीं सकते, खाना हज़म नहीं कर सकते।

मैं तो कहना चाहूँगा कि जो साप्ताहिक सत्संग में भाग नहीं लेते, वे मालिक की नज़र में नहीं रहते बल्कि उससे हट जाते हैं। इसलिए जो भी मालिक की नज़र में रहना चाहता है, उसे साप्ताहिक सत्संग में अनिवार्य रूप से भाग लेना चाहिए।

1) तीन प्रारम्भिक सिटिंग लेने के बाद ही नये अभ्यासियों को सामूहिक सत्संग में भाग लेने की अनुमति दी जाये।

2) अभ्यासियों को अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए साप्ताहिक सत्संग में आना चाहिए, दोस्तों, ग्राहकों आदि से मिलने के लिए नहीं।

3) जब अभ्यासी सत्संग के लिए आते हैं, उन्हें ख़ामोश रहना चाहिए और राजनैतिक या अन्य किसी प्रकार की गपशप में शामिल नहीं होना चाहिए।

4) जब अभ्यासी सत्संग में आते हैं, उन्हें अनुशासन-बद्ध रहना चाहिए। यहाँ पुरुष हैं, स्त्रियाँ हैं, सबको पंक्तियों में बैठना चाहिए। खम्भों के सहारे या पंखे के नीचे बैठने की ताक में नहीं रहना चाहिए। आप आते हैं, जहाँ भी जगह हो बैठ जाइये। यदि आपको कोई असुविधा है

और आराम से बैठने की ज़रूरत है तो पहले ही आकर बैठ जाइये। अन्यथा आपको पंक्ति में ही बैठना पड़ेगा। स्वयं सेवकों से अपेक्षा न करें कि वे आपको सत्संग में बैठने का तरीक़ा बतायेंगे।

5) अभ्यासियों को सत्संग शुरू होने के दस मिनट पहले ही आकर बैठ जाना चाहिए। मालिक द्वारा दी जानेवाली चीज़ को स्वीकार करने के लिए उन्हें ध्यान की मनोदशा में, तैयार बैठना चाहिए।

6) सत्संग समाप्त होने के बाद अभ्यासियों को चाहिए कि वे पाँच मिनट के लिए अपनी दशा पर ग़ौर करें और देखें कि ध्यान के दौरान उन्होंने क्या अनुभव पाया है। उन्हें वे बातें अपनी डायरी में तत्काल नोट कर लेनी चाहिए।

7) सामूहिक ध्यान के बाद पुस्तक पढ़ना भी सत्संग का ही एक अंश है। अतः अभ्यासियों को चाहिए कि वे ध्यान-मण्डप में ही बैठे रहें और पढ़कर सुनाई जानेवाली बातों को ध्यान से सुनें।

8) अभ्यासियों को चाहिए कि वे सत्संगी भाइयों से प्रेम से पेश आएँ, और दैनिक बातचीत व व्यवहार में मिठास तथा शालीनता लायें।

9) अभ्यासियों के साथ बर्ताव में शिष्टता हो और वह उनके विकास के अनुरूप हो। सीधे विरोध करना बहुत बुरा है।

व्यक्तिगत सिटिंगः अभ्यासी को भली-भाँति सफ़ाई के निमित्त, महीने में कम से कम दो बार प्रशिक्षक के सम्मुख बैठक व्यक्तिगत सिटिंग ले लेनी चाहिए।

जहाँ केन्द्र में प्रशिक्षक नहीं है, और यदि व्यक्तिगत सिटिंग के लिए किसी और केन्द्र के प्रशिक्षक के पास जाने में वे असमर्थ हैं तब उन्हें शुक्रवार के दिन रात को ठीक नौ बजे ध्यान में बैठने की सलाह दी जाती है।

❀❀❀

इस संकलन में निम्नलिखित पुस्तकों का उपयोग किया गया है :

१) अक्षर सत्य

२) उनके पदचिह्नों पर - भाग २

३) दिल से दिल की बात – भाग १, २ व ३

४) धर्म और आध्यात्मिकता

५) प्यार और मृत्यु

६) प्रशिक्षकों के लिए दिशा निर्देश – भाग २

७) मानव विकास में सदगुरु की भूमिका

८) मेरे गुरुदेव

९) राम चंद्र की आत्मकथा – भाग १ व २

१०) राम चंद्र की संपूर्ण कृतियाँ – भाग १ व २

११) वृक्ष का फल

१२) व्यक्तित्व का प्रकटन

१३) सहज मार्ग – एक परिचय

१४) सहज मार्ग के सिद्धान्त – भाग १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११

१५) सहज मार्ग संगोष्ठि की कार्यवाही

१६) सिंह का हृदय

सहज मार्ग शोध संस्थान आपके समक्ष एक छोटा-सा शोध-कार्य प्रस्तुत कर रहा है, जो सहज मार्ग रूपी आकाश का एक कण है, उस महासागर की एक बूँद है । यह इस क्रम में प्रथम पुस्तिका है और इसमें प्रार्थना, ध्यान, सफ़ाई, प्राणाहुति, सत्संग और डायरी लेखन के संबंध में हमारे गुरूओं के विभिन्न कथन समाविष्ट हैं । जहाँ भी संभव हुआ, हमने इसे प्रश्नोत्तरी के रूप में देने की कोशिश की है ।

हमारे परम प्रिय गुरुदेव की असीम कृपा से हम इस प्रथम भाग को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में सहज मार्ग के विभिन्न तत्वों के बारे में इसी प्रकार के अनेक संकलन निकाले जाएँगे ।

हमें पूर्ण विश्वास है कि पूज्य बाबूजी महराज के कथन "पढ़ो और आनन्द उठाओ, करो और अनुभव करो" को सभी अभ्यासी भाई-बहन चरितार्थ करेंगे और इस पुस्तिका से लाभ उठायेंगे ।

हम अपने प्रिय गुरुदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें उनके इस कार्य को सुचारु रूप से करने की हिम्मत व शक्ति दें ।

सहज मार्ग शोध संस्थान
चेन्नै
१ अकतूबर १९९८